पत्र-पल्लव

अनुवादकर्ता

लल्लीप्रसाद पाण्डेय

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२६

१] [मूल्य १॥)

सूची

निवेदन

बाबू प्रभातकुमार मुखोपाध्याय बार-एट-ला की पुस्तक "गल्पवीथि" की तीन कहानियाँ "त्रिधारा" में प्रकाशित हो चुकी हैं; शेष पाँच इस संग्रह में हैं।

पाँचों कहानियाँ अपने-अपने ढङ्ग की अनोखी हैं। अन्तिम कहानी में विलायत का चित्र है; शेष में भारत की धार्मिक, साहित्यिक और सामाजिक दशा की छवि है। भाषा, भाव, सुरुचि और आदर्श की उत्तमता के कारण प्रभात बाबू की कहानियाँ देश-विदेश में सर्वत्र सम्मान पा चुकी हैं। उनकी प्रशंसा में कुछ लिखना अनावश्यक है।

अनुवादक

पत्र-पल्लव

भण्डाफोड़

१

अगहन की ठण्ड लगने से पण्डित गङ्गानारायणजी को खाँसी चलने लगी थी। खाँसी क्या हुई उसने गङ्गानारायणजी से ख़ास मुहब्बत कर ली। रोग हटने के बदले दिन-ब-दिन बढ़ने ही लगा। अब यह हालत है कि खाँसते-खाँसते सारी रात बीत जाती है, घड़ी भर भी सुख की नींद नहीं सो सकते। यदि स्त्री रामदुलारी के सेवा-शुश्रूषा करने से आँख लग भी जाती है तो दस मिनिट भी नहीं हो पाते कि खाँसते-खाँसते पण्डित गङ्गानारायण बेचैन होकर एकदम उठ बैठते हैं। लगातार डेढ़ महीने से दवा-दारू हो रही है पर ज़रा भी आराम नहीं। खाँसी क्या और किसी को नहीं आती?—फ़िक्र इसी बात की है कि यह व्याधि पण्डित गङ्गा-नारायण के यहाँ वंशपरम्परा से है। इनके पिता पर भी इसकी कृपा थी और इनके दो भाई तो, बहुत ही थोड़ी उम्र में, इसके पञ्जे में फँसकर पार हो गये हैं। इसी कारण

पण्डित गङ्गानारायण कुछ डर गये हैं। दो कम्पनियों में दस हज़ार पर उनकी जान-बीमा थी। बीमा के काग़ज़-पत्र और उसकी दोनों रसीदें निकालकर उन्होंने स्त्री को दे दीं। एक कम्पनी-काग़ज़ (प्रामिसरी नोट) था। वह भी उन्होंने रामदुलारी के सामने, उसी के नाम से, एन्डोर्स (पुश्त पर दस्तख़त) कर दिया है।

पण्डित गङ्गानारायण की उम्र पैंतीस साल के लगभग है। रामदुलारी आप से दस वर्ष छोटी है। विवाह हो जाने पर, दो-तीन वर्ष में, आपने आर्यसमाज में नाम-लिखाया था। तभी से आप आर्यसमाज के उत्साही सभा-सद हैं। एम० ए० की डिगरी प्राप्त करके आपने क़ानून का अभ्यास किया था। पर वकालत का पेशा आपको इस-लिए न रुचा कि उसमें झूठी बातें भी कहनी पड़ती हैं। तब, आपने स्कूल-मास्टरी में प्रवेश किया। गत पाँच वर्ष से आप एक ग़ैर-सरकारी कालेज में अध्यापक हैं। इलाहाबाद के जार्ज टाउन मुहल्ले में आप एक छोटे से बँगले में रहते हैं। घर में स्त्री और तीन साल का छोटा बच्चा है—नाम है सत्यनिधि। जौनपुर ज़िले का एक नौकर रामटहल है और है कहार-कुलोद्भवा एक नौकरनी। नाम तो उसका प्यारी है पर कहते हैं सभी 'आया'।

उस दिन, शाम के बाद, पण्डित साहब पलँग पर लेटे थे। रामदुलारी बैठी-बैठी उनके पैर दबा रही थी पलँग

से ज़रा अन्तर पर एक कोने में, टेबिल के ऊपर, लेम्प जल रहा था। रोशनी बिलकुल धीमी थी—वही फीकी रोशनी कहीं पण्डित गङ्गानारायण को असह्य हो उठे, इस डर से पुराने 'आर्यमित्र' की ओट करके प्रकाश को इस ओर आने की मनाही कर दी गई थी। आया दूसरे कमरे में बच्चे को सुलाने की चेष्टा कर रही थी। बँगले में सन्नाटा छाया हुआ था। रामदुलारी हाथों से तो स्वामी की चरण-सेवा कर रही थी और मन में महावीरजी महाराज, विन्ध्यवासिनी देवी आदि—आर्यसमाज की दृष्टि से निषिद्ध—देवी-देवताओं का स्मरण करके सजल नेत्रों से प्रार्थना कर रही थी कि ऐसी कृपा करो जिसमें मेरे स्वामी को जल्दी आराम हो जाय।

एक कट्टर आर्यसमाजी की स्त्री महावीर और विन्ध्य-वासिनी को पुकार रही है, इसमें कोई अचरज की बात नहीं। भला कितने भाग्यवान् पुरुषों को ऐसी स्त्री मिलती है जो उनके सर्वथा योग्य हो? पण्डित गङ्गानारायण का भाग्य भी इस विषय में ऐसा ही था। प्रायः देखा जाता है कि बिलकुल सीधे-सादे शान्त स्वभाववाले पुरुष की स्त्री का मिज़ाज बहुत गरम रहता है, महामहोपाध्याय पण्डितजी की पण्डितानी को 'काला अच्छर भैंस बराबर' होता है, और क्रोधी तथा दुश्च-रित्र मनुष्य की जीवन-सङ्गिनी होती है पातिव्रत्य के गुण से समाज में आदर्शस्थानीय। योग्य के साथ योग्य की योजना

उनके यहाँ प्रायश्चित्त के लिए किये गये न्योते में भोजन करने गई थी।

बगलवाले कमरे में लगी हुई घड़ी ने टन्-टन् करके आठ बजा दिये। पण्डित गङ्गानारायण करवट बदलकर जाग उठे। उन्होंने क्षीण स्वर से पूछा—"क्यों, कितने बजे?"—यह बात कहते-कहते उन्होंने खाँसना शुरू कर दिया।

फुर्ती से सिरहाने जाकर रामदुलारी उनकी छाती पर हाथ फेरने लगी। ज़रा देर मे उनकी खाँसी रुकने पर बोली—आठ बजे हैं। दवा खाने का वक़ हो गया। दवा ले आऊँ?

दवा पीने पर पण्डित गङ्गानारायण को कुछ आराम हुआ। धीरे-धीरे एक-आध बात कहने लगे। घर-गृहस्थी की बात, बच्चे की चिन्ता और फिर अपने रोग की बातें करते-करते बोले—कई दिन से मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ।

रामदुलारी—कौन बात?

गङ्गानारायण—देखो, कई वर्ष से हम दोनों 'आर्य' हो गये हैं। मैं इस धर्म को मनुष्य-जाति का एकमात्र सत्य धर्म मानता हूँ। यही मेरा दृढ़ विश्वास है। लेकिन यह तो बताओ, तुम्हारा विश्वास भी इसी तरह दृढ़ है न?

बिना किसी दुबिधा के रामदुलारी ने कहा—"और नहीं तो क्या?" वह जानती थी कि जो मैं कुछ और उत्तर दूँगी तो मन में इन्हें दुःख होगा। यह आज कुछ नई बात नहीं

है। बहुत दिनों से वह इस ढँग का कपटाचरण करती आ रही है। पहले, बरस दो बरस तक, वह सच बात कह देती थी और अपनी बुद्धि के अनुसार स्वामी के साथ तर्क-वितर्क भी किया करती थी। किन्तु इससे गङ्गानारायण के हृदय में ठेस लगती थी। रामदुलारी का विश्वास था कि झूठ बोलना भी पाप है, और स्वामी के मन को खिन्न करना भी पाप है; किन्तु स्वामी के जी को दुखाने का पाप झूठ बोलने के पाप से सौ गुना भारी है।

गङ्गानारायण ने कहा—अच्छा, यह तो हुई धर्म-सम्बन्धी बात। अब सामाजिक रीति की एक बात और बताओ। स्त्रियों को लिखना-पढ़ना न सिखलाकर घर में बाँधे रखने की अपेक्षा उन्हें यथारीति शिक्षा देना और स्वाधीन रहने देना समाज के लिए हितकारी है न? बोलो तुम्हारा क्या विश्वास है?

रामदुलारी ने रटे हुए सबक़ की तरह कहा—और क्या, स्त्री और पुरुष दोनों से ही तो समाज सङ्गठित है। पुरुष लिखना-पढ़ना सीखें और स्त्रियाँ मूर्ख बनी रहें—इससे तो समाज का आधा अंश अँधेरे ही में छिपा रहेगा। स्त्रियों को घर में बन्द रखना तो उसी बर्बरयुग की प्रथा है—उससे कभी भलाई नहीं हो सकती।

कुछ देर तक गङ्गानारायण चुपचाप पड़े रहे। रामटहल ने चिक के उस तरफ़ खड़े होकर धीमे स्वर में पूछा—मेम साहब, मालिक के लिए बार्ली तैयार है। ले आऊँ?

रामदुलारी ने स्वामी से पूछा—इस समय बार्ली पीजिएगा?

गङ्गानारायण—अभी ठहरो, नौ बजने दो।

यही आज्ञा पाकर रामटहल चला गया। गङ्गानारायण ने रामदुलारी के हाथ को अपने हाथों में लेकर पूछा—हाँ, विधवा-विवाह को तुम कैसा समझती हो?

अब कपट करके झूठ उत्तर देना रामदुलारी के लिए ज़रा कठिन हो गया। इस विषय में भी वह पुराने सनातन हिन्दूमत को ही मानती थी—किन्तु और-और विषयों की तरह इसका उलटा उत्तर देने में उसे व्यथा होने लगी। विधवा-विवाह को उचित मानने और उसकी आवश्यकता को सिद्ध करने के लिए अब तक गङ्गानारायण डंके की चोट अनेक वक्तृताएँ दे चुके हैं—इसी से रामदुलारी मुश्किल में पड़ गई।

गङ्गानारायण ने रामदुलारी के हाथ पर बड़े प्यार से हाथ फेरते हुए इसी प्रश्न को फिर दुहराया। तब, रामदुलारी ने, दोनों पक्षों को सँभालने की चेष्टा से रुक-रुककर कहा—हाँ, बुराई क्या है—किसी-किसी के लिए—आवश्यक हो सकता है।

गङ्गानारायण—हाँ, यह बात ठीक है; यही होना चाहिए। एक समय था, जब मैं सोचता था कि यदि कोई स्त्री तीस वर्ष की होने से पहले विधवा हो जाय तो उसके लिए विवाह कर लेना ही अच्छा है—नहीं तो सामाजिक हानि होने की सम्भावना है। किन्तु इधर, कुछ दिनों से,

मेरी वह राय पलट गई है। अब मैं सोचता हूँ कि जिस स्त्री के बाल-बच्चे हो गये हों, और स्वामी का देहान्त हो जाने पर भी जिसे अन्न-वस्त्र की कमी न हो ऐसी स्त्री के लिए विधवा-विवाह कुछ ठीक नहीं। बोलो, तुम्हारा क्या विश्वास है?

इस प्रश्न को सुनकर रामदुलारी का हृदय एकाएक और का और हो गया। उसका सिर घूमने सा लगा। दोनों आँखों को ठेलकर आँसुओं ने बाहर निकलना चाहा। वह कुछ उत्तर न दे सकी।

गङ्गानारायण ने थोड़ी देर प्रतीक्षा करके फिर पूछा—बतलाओ, तुम्हारा क्या विश्वास है?

बाष्प-रुद्ध कण्ठ से रामदुलारी बोली—मेरा विश्वास, सुनिएगा?

"हाँ, बतलाओ।"

"मेरा तो यह विश्वास है कि जो स्त्री अपने पति को जी-जान से चाहती रही हो—फिर उसकी उम्र चाहे पचास वर्ष की हो चाहे पन्द्रह की, वह राजरानी हो या बिलकुल भिखारिनी—उसका भाग्य अगर फूट जाय, यदि वह विधवा हो जाय, तो उसके लिए दुबारा विवाह करना महापाप है!"

रामदुलारी चुप हो गई। उसकी साँसें जल्दी-जल्दी चल रही थीं। घर में काफ़ी उजेला न था। अगर खूब प्रकाश होता तो वह देखती कि उसके रोगक्लिष्ट स्वामी के चेहरे पर एक प्रसन्नता की ज्योति खिल उठी है।

२

पण्डित गङ्गानारायण की बीमारी धीरे-धीरे बहुत बढ़ गई। आराम होने का कोई लक्षण नज़र नहीं आता। बीच-बीच में एक-आध दिन वे कालेज चले जाते थे। एक दिन कफ के साथ ज़रा सा रक्त निकल आया। इष्टमित्रों की राय से उस दिन १५) फ़ीस देकर एक मशहूर अँगरेज़ डाक्टर को बुलाकर जाँच करवाई। उसकी व्यवस्था के अनुसार औषधि-सेवन करने से गङ्गानारायण अब कुछ-कुछ अच्छे हैं, आज पाँच दिन के बाद कालेज गये हैं।

दोपहर ढलने पर रामदुलारी की एक सखी भगवानदेई ने दर्शन दिये। यह रामदुलारी की समवयस्का है। इसके स्वामी हाईकोर्ट के वकील हैं। हिन्दू-परिवार की वधू होने पर भी भगवानदेई अच्छी तरह लिख-पढ़ सकती है। इस काम में वह रामदुलारी से आगे है। अपने पति से उसने अँगरेज़ी का भी थोड़ा सा अभ्यास कर लिया है। भगवान-देई के एक लड़का हुआ था, वह पाँच बरस का होकर गुज़र गया है। रामदुलारी का बेटा उससे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इसी से, भगवानदेई बीच-बीच में यहाँ आती और बच्चे को हृदय से लगाकर आनन्द मनाती है। बच्चा भी उसे बड़ी ममता से मौसी कहता है।

आज भगवानदेई ने सब बातें सुनकर कहा—देखो जी तुम लोग ब्रह्मज्ञानी हो, मूरत-ऊरत नहीं मानतीं, इसी से

मुश्किल है। नहीं तो यह बीमारी न जाने कबकी दूर हो गई होती।

रामदुलारी बड़े आग्रह के साथ बोली—बहन, सो किस तरह?

भगवानदेई कहने लगी—हमारे मैके से विन्ध्यवासिनी देवी दूर नहीं, और उनकी महिमा तो प्रसिद्ध ही है। साक्षात् देवी हैं। उनके पण्डा सिद्धिनाथ कठमलिया महाराज मन्त्र पढ़कर भभूत (विभूति) देते हैं। और कुछ नहीं, सवा सेर के लगभग पवित्र देशी शक्कर का प्रसाद वहाँ ले जाना पड़ता है। तब पण्डाजी न-जाने क्या मन्त्र-जन्त्र पढ़ देते हैं। दूसरे दिन देवी मैया का प्रसाद और फूल आदि रोगी के घर भेज दिया जाता है। फूलों को माथे से लगाकर भक्ति से छाती पर उसी विभूति को मल दिया जाता है। मैंने कहा न कि खेल सा हो जाता है। जिसने उसे लगाया वही चङ्गा हो गया।

रामदुलारी बोली—तो बहन, आर्यसमाजी होने के कारण क्या उस विभूति से हमें आराम न होगा?

"होगा क्यों नहीं, ज़रूर होगा।"—इसी समय कहीं से बच्चा आ गया और भगवानदेई की गोद में कूद पड़ा। वह मौसी के मुँह से निकली उस बात को, माँ की ओर मुँह करके, दुहराने लगा—जूब ओगा, जूब ओगा।

भगवानदेई बच्चे को प्यार करते-करते बोली—"लो सुनो, बालक के मुँह से देवी मैया क्या कह रही हैं।" रामदुलारी की देह ज़रा सा काँप गई।

भगवानदेई ने कहा—कुछ मुसलमान तक भभूत ले जाते हैं। उनका भला होता है तो तुम्हारा न होगा? माता के नज़दीक क्या हिन्दू, मुसलमान, आर्या और क्रिस्तान हैं बहन?—उन्हें तो सब एक से प्यारे हैं।

हाथ मटकाकर बच्चे ने वीररसात्मक भाव से कहा—अब एक ये औं।

रामदुलारी अपने पति के स्वभाव को भली भाँति जानती थी। वह जानती थी कि विन्ध्यवासिनी देवी का नाम सुनते ही उस भस्म को वे उसी दम नाबदान में फेंक देंगे। इसलिए, उसने निश्चय किया कि जब वे सो जायँगे तब गुप्त रूप से फूल उनके माथे से लगा दूँगी; और छाती में भस्म मल दूँगी। उसने सखी से कहा—अच्छा गोइयाँ, तुम मुझे वह भस्म मँगवा दो। मैं छिपाकर चुपचाप उनकी छाती में मल दूँगी—उन्हें ख़बर भी न होगी। तो कब तक मँगवा दोगी?

भगवानदेई ने गोद में बच्चे को सुलाने के लिए थपकी देते-देते कहा—मैं आज ही भाभी को चिट्ठी लिख दूँगी। पर एक बात है। चिट्ठी भेजने से शायद काम देर में हो। वहाँ से जल्दी भस्म न भेजी जावे। अच्छा तो यही जान पड़ता है कि एक नौकर को भेज दूँ।

"हाँ, यही ठीक है। तो अब ऐसा करो कि कल ही आदमी चला जावे। गाड़ी कै बजे जाती है?"

"सवेरे की गाड़ी से भेज दूँगी। परसों दोपहर को वहाँ से भस्म लेकर रवाना होगा तो शाम को यहाँ आ जायगा।"

रामदुलारी ने बड़ी अधीनता से कहा—अच्छा बहन, ऐसा ही करो। आने-जाने का रेल-किराया क्या लगेगा? रुपये लेती जाओ।

भगवानदेई बोली—किराया कुछ ज़्यादा नहीं लगता। उसके लिए इतनी फ़िक्र क्या है? मैं सवेरे ही आदमी भेज दूँगी। लेकिन एक बात और भी है।

"वह क्या?"

"चङ्गे हो जाने पर देवी मैया की पूजा करने जाना पड़ता है। जिसकी जैसी मान्ता हो। उस साल हमारे देवर को इसी तरह की तकलीफ़ हुई थी तब हमने मान्ता करके भभूत मँगाई थी। फिर, आराम हो जाने पर, हमने धूमधाम से पूजा की और पाठ कराकर हवन कराया था।"

रामदुलारी ने उच्छ्वसित होकर कहा—अच्छा, मैं भी पूजा करूँगी। देवी मैया उनको चङ्गा कर दें, मैं वहाँ जाकर उनका दर्शन करूँगी और विधि से पूजा कराऊँगी।

भगवानदेई बोली—लेकिन पण्डितजी तुम्हें वहाँ जाने भी देंगे?

"ख़बर पा जायँगे तो थोड़े जाने देंगे? किसी बहाने से चलूँगी। जैसे बनेगा, कर ही दिया जायगा। अभी इस सङ्कट से तो बचें।"

बच्चा सो गया था। भगवानदेई बड़ी सावधानी से उसका मुँह चूमकर और उसे रामदुलारी की गोद में देकर घर चली गई।

३

पण्डित गङ्गानारायण कालेज से पैदल ही घर चले आते थे, पर आज किराये की गाड़ी में बैठकर आये हैं। डाकृर साहब की दवा से जो थोड़ा-बहुत आराम हुआ था वह आज कालेज में तीन घण्टे तक चिल्लाने से लुप्त हो गया। गाड़ी से उतरकर वे किसी तरह बँगले में आये और पलँग पर लेट रहे। उनके चेहरे-मोहरे को देखकर रामदुलारी बहुत डर गई, डाकृर साहब की उसी दवा का सेवन कराने लगी। पाँच बजे पण्डितजी को ख़ूब ज़ोर से बुख़ार चढ़ आया। शाम को बुख़ार की तेज़ी में वे बेहोश हो गये।

रामटहल ने आकर अदब से पूछा—सरकार, डाकृर साहब को ख़बर दे आई?

रामदुलारी ने कहा—"नहीं, अब रहने दे। डाकृर की कुछ ज़रूरत नहीं।" वह मन ही मन प्रार्थना करने लगी—"हे माता विन्ध्यवासिनी, मुझे तुम्हारे ही चरणों का आसरा है। जो तुम हमारी ख़बर न लोगी, हम पर दया न करोगी, तो हमारी क्या दशा होगी? अब मैं किसी डाकृर-वाकृर को न बुलाऊँगी। तुम्हीं इनके लिए डाकृर हो। मेरी चूड़ियों की लाज अब तुम्हारे ही हाथ में है—दुहाई

देवी मैया, किसी तरह सङ्कट से उबारो।" उसने बेहोश स्वामी के माथे से सवा रुपया लगाकर अपने सिन्दूर के डिब्बे में देवी मैया की पूजा के लिए अलग रख दिया।

किसी तरह रात कट गई। बीमारी की ख़बर पाकर पण्डित गङ्गानारायण के धर्म-बन्धु लोग सबेरे आ गये। उनकी अच्छी हालत न देख एक सज्जन अँगरेज़ डाक्टर को बुला लाया। साहब ने आकर अब दूसरा ओषधि की व्यवस्था की।

जब ये लोग जाने को तैयार हुए तब ओषधि पिलाने और शुश्रूषा करने के सम्बन्ध की बातें रामदुलारी को समझाने लगे। उस समय उसने माथा झुकाकर अस्फुट स्वर में कहा—देखिए, दवा तो न-जाने कितने तरह की हो चुकी। अब बिना ईश्वर की कृपा के रोग से छुटकारा हो जायगा?

इनमें जो प्राचीन पुरुष थे उन्होंने कहा—हाँ, देवीजी ठीक कहती हैं। ईश्वर की कृपा ही प्रधान है। उनकी कृपा हो जाय तो बिना ही दवा के आराम हो सकता है और कृपा न होगी तो साक्षात् धन्वन्तरि भी कुछ न कर सकेंगे। डाक्टर की मजाल ही क्या है!

रामदुलारी ने आँखें पोंछकर कहा—इसी से कहती हूँ—अब चाहे कुछ दिन दवा रोककर—

वृद्ध ने कहा—बहुत ही अच्छी बात है। तुम्हारे मन के भाव को मैं समझ गया। आज शाम को हम लोग यहीं सन्ध्या करेंगे और फिर हवन करके ईश्वर से प्रार्थना करेंगे।

हम लोगों को यह काम पहले ही करना चाहिए था। किन्तु इस बात पर हमने ध्यान ही नहीं दिया --हम लोग पापी हैं। आपने बड़ी अच्छी बात कही। परन्तु अभी दवा के बन्द करने की ज़रूरत नहीं। दवा भी तो उन्हीं की नियामत है। दवा को भगवान् का चरणामृत समझकर, जैसा डाकृर ने बतलाया हो उसी तरह, पिलाती जाइए। हम लोग शाम को आवेंगे।

शाम को जब ये सब लोग एकत्रित हुए तब देखा कि हालत में कोई फ़र्क़ नहीं है—वही दशा है। हाँ, बुख़ार ज़रूर कुछ घट गया है। इनमें एक डाकृर भी थे। उन्होंने भली भाँति रोगी की परीक्षा करके गुप्त रूप से सम्मति प्रकट की, 'आज की रात कटती है या नहीं, इसमें सन्देह है।' यह बात उन्होंने इतने धीमे स्वर में कही कि उसकी भनक रामदुलारी के कानों तक न पहुँच सकी।

इसके बाद सभी आर्य-बन्धु रोगी की शय्या के पास बैठकर भगवान् से प्रार्थना करने लगे। घण्टे भर तक उपासना हुई। पास ही, एक अलग आसन पर, बैठी हुई रामदुलारी इन सबकी सम्मिलित उपासना का अनुकरण कर रही थी। उसकी गोद में बच्चा सो रहा था। वह मन ही मन कह रही थी—देवी मैया, कल जब तक तुम्हारी भभूत नहीं आ जाती तब तक मेरे स्वामी की रक्षा करो। तुम्हारी भभूत आई कि फिर मैं निडर हो गई। फिर मुझे तिल भर भी चिन्ता नहीं।

मुझ दुखिया की ओर देखो—दुहाई माता, तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, लाज रख लो।

४

निराकार परब्रह्म की अनुकम्पा से हो अथवा देवी मैया के होमकुण्ड की भभूत के गुण से हो—या डाक्टरी दवा के प्रभाव से हो, अथवा यह कहो कि रोग के भोग का समय बीत गया था इसलिए—पण्डित गङ्गानारायण दिन पर दिन चङ्गे होने लगे। रामदुलारी के मुँह पर फिर हँसी की छटा दीखने लगी।

एक महीना हुआ, पण्डित गङ्गानारायण बिलकुल चङ्गे हो गये हैं। उनकी आँखों के कोयों में बीमारी के कारण जो कालिमा आ गई थी वह दूर गई है। चेहरे की रङ्गत भी बदल गई है। गले की हड्डी छिपती जा रही है और रात को नींद भी खूब आने लगी है। रामदुलारी ने भजन-संग्रह की पोथी में देवीजी की प्रसादी का फूल और भस्म छिपाकर सन्दूक़ में रख ली है। अभी तक वह जब मौक़ा पाती है तब, उसे निकालकर निद्रित स्वामी के माथे से लगा दिया करती है।

बीच-बीच में भगवानदेई तक़ाज़ा कर जाती है—बहुत दिन हो गये, मान्ता को पूरी न करना अब अच्छा नहीं बहन! अन्त में देवीजी के क्रोध में तो न पड़ोगी?

दोनों सखियाँ अक्सर सलाह किया करती थीं कि यहाँ से क्या बहाना करके पूजा करने चलें। पर स्थिर अब तक

कुछ भी न हो पाया। भगवानदेई का नैहर मिर्ज़ापुर में है। मिर्ज़ापुर से विन्ध्याचल कोई तीन कोस होगा। दोपहर की गाड़ी से रवाना हों तो रात को मिर्ज़ापुर में रहें और दूसरे दिन पूजा करके शाम को इलाहाबाद लौट आवें। किन्तु यह पूरे चौबीस घंटे की छुट्टी कैसे मिले—रामदुलारी सोच-विचार कर कुछ भी निश्चय नहीं कर सकती।

एक दिन रामदुलारी ने ज़रा मान करके स्वामी से कहा—सुनो तो सही, भगवानदेई हमें एक दिन के लिए अपने नैहर ले जाना चाहती है।

"किसलिए?"

"योंही, मन बहलाने को—और किसलिए?"

"वहाँ खाओगी क्या?"

"जो उनके घरवाले खायँगे वही मैं भी खाऊँगी—हलुवा, पूरी, तरकारी, दूध-दही, अचार-चटनी।"

"वे लोग हिन्दू हैं। देहात में अक्सर हर ब्राह्मण के घर ठाकुरजी रक्खे रहते हैं। उनके यहाँ जो कुछ भी बनता है, उसका पहले ठाकुरजी को भोग लगा दिया जाता है। भोग लग जाने पर ही वे खाते-पीते हैं। तुम तो उस प्रसाद को खा न सकोगी। फिर बताओ क्या खाओगी?"

रामदुलारी मन ही मन हँसी। उसने कहा—ठाकुरजी का प्रसाद ग्रहण करने में जो आपको आपत्ति है तो फिर मैं अपने लिए अलग रसोंई बना लूँगी। यह कौन बड़ी बात है?

पण्डित गङ्गानारायण कुछ देर गम्भीर भाव धारण किये बैठे रहे। अन्त में कहा—देखोजी, तुम्हें हम असल बात बतलाये देते हैं। जो झूठे धर्म पर विश्वास करते हैं, मूर्त्ति पूजते हैं, उनके साथ तुम बहुत मिलती-जुलती हो। इसे मैं पसन्द नहीं करता। तुम वहाँ न जाना।

चैत का महीना है। पूजा करने को जाने के लिए अभी तक कोई पक्का बहाना नहीं मिला। एक दिन भगवान-देई के आने पर रामदुलारी बोली—बहन, हम तो बड़ी मुश्किल में हैं; तुम्हीं न हमारी तरफ़ से पूजा करने चली जाओ?

भगवानदेई—पर तुमने ऐसी मानता कहाँ मानी है? तुमने तो कहा था, 'स्वयं आऊँगी; पूजा करूँगी और नारियल भेंट चढ़ाऊँगी।' अब ऐसा करने से काम कैसे बनेगा? राम-राम! ऐसी बात मन में भी न लाना। अब अच्छे हुए हो-आये पर क्या मैया के क्रोध में पड़ोगी?

दो दिन के बाद पण्डित गङ्गानारायण ने कालेज से लौटकर कहा—"आज तबीअत फिर ख़राब हो गई।" खो-खो करके वे धीरे-धीरे खाँसने लगे। यह देखकर रामदुलारी के सिर में चक्कर आ गया। सारी रात उसे अच्छी नींद न आई। वह मन ही मन प्रार्थना करने लगी—हमसे बड़ा भारी अपराध बन गया है, हमें माफ़ कर दो मैया! जैसे होगा, एक महीने के भीतर ही तुम्हारी पूजा करने आऊँगी;

फिर ऐसा करने में जो भोगना पड़ेगा, भोग लूँगी। माता, हम पर नाराज़ न हो जाना। मेरे स्वामी को तन्दुरुस्त रखना।

इस मर्तबा पण्डित गङ्गानारायण बहुत ही सस्ते छूटे—बहुत जल्द चङ्गे हो गये और दो हफ़्ते में ही वह मौक़ा मिल गया जिसकी ताक में रामदुलारी इतने दिनों से थी। पण्डित गङ्गानारायण ने कालेज से लौटकर कहा—ईस्टर की छुट्टी में कालेज बन्द रहेगा। हम चार दिन तक घर न रहेंगे।

रामदुलारी—क्यों, कहाँ जाओगे?

"कुछ मित्रों के साथ हम दो-चार गाँवों में घूम-फिर कर प्रचार करेंगे।"

"किस-किस गाँव में प्रचार होगा?"

"अकौढ़ी गाँव में हमारा सदर मुक़ाम रहेगा। जो लोग प्रचार करने जायँगे उनमें से अधिक लोगों का घर भी इसके आस-पास ही है। एक-एक दिन कुछ गाँवों में प्रचार करेंगे।"

रामदुलारी रोकने लगी। उसने कहा—देखो, अभी तक तबीअत बिलकुल नहीं सँभली है। ऐसी अवस्था में मेहनत करने से, और समय पर नियम से भोजन आदि न मिलने से, तबीअत बिगड़ते कितनी देर लगेगी?

गङ्गानारायण ने गम्भीर स्वर में कहा—यदि भगवान् का कार्य करते-करते देह छूट जाय तो इससे बढ़कर सौभाग्य और क्या हो सकता है? तुम कोई चिन्ता न करो। ईश्वर रक्षक है।

छुट्टी के पहले ही दिन सबेरे गङ्गानारायण रवाना हो गये। पिछली रात को वे जब बेख़बर सो रहे थे तब रामदुलारी ने विन्ध्यवासिनी देवी की प्रसादी—भस्म और वही सूखा फूल निकालकर उनके माथे और हृदय पर फेर दिया था।

५

शुक्रवार से लेकर सोमवार तक तातील है। सोमवार को शाम तक गङ्गानारायण घर लौटेंगे। भगवानदेई ने अपने नैहर को चिट्ठी भेजकर सब इन्तज़ाम पक्का करा दिया था। शनिवार को दस बजे की गाड़ी से दोनों सखियाँ रवाना हो गईं—साथ में भगवानदेई का देवर शम्भुदयाल था।

भगवानदेई की माँ और भौजाइयों ने रामदुलारी को बड़ी आव-भगत से लिया। घर की गाड़ी थी। यह तय हुआ कि बड़े तड़के इसी गाड़ी में बैठकर माता विन्ध्यवासिनी के दर्शन-पूजन करने जायँ और फिर वहाँ से स्टेशन जाकर रेल पर सवार हो जायँगी। भगवानदेई की माँ ने रोककर कहा—रोज़-रोज़ थोड़े आती हो, न मैं जी भरके बच्चे को खिला सकी और न कोई अच्छी चीज़ बनाकर तुम्हारा आदर कर सकी, इत्यादि।

भगवानदेई ने अपनी अम्माँ को समझा दिया कि रामदुलारी के घर और कोई नहीं है, गृहस्थी की मालकिन वही है। कल शाम तक उसे घर लौट जाना है। पूजा करके जो खाने-पीने के लिए फिर घर आवें तो बारह बजेवाली गाड़ी

खुल जायगी और फिर दिन डूबे तक और कोई गाड़ी नहीं मिलती, इत्यादि।

सबेरे उठकर रामदुलारी ने स्नान किया। भगवानदेई की रेशमी साड़ी पहनकर वह पूजा करने को तैयार हो गई। रास्ते में कलेवा करने के लिए भगवानदेई की अम्मा ने पूरी, तरकारी, अचार और मिठाई रख दी। शम्भुदयाल भोजन करके मिर्ज़ापुर से सवार होकर विन्ध्याचल में मिल जायगा।

पूजा करके दिन के साढ़े ग्यारह बजे भगवानदेई गाड़ी में स्टेशन पर पहुँच गई।

बारह बज गये। मिर्ज़ापुर से गाड़ी छूटने की घंटी बजी। टिकिट की खिड़की खुल गई।

अन्त में ट्रेन आने पर गाड़ीवान रामदीन इनका सामान लेकर ज़नाने डिब्बे में रख आया। उसी में ये सवार हो गईं।

बोतल में घर से दूध भर लाई थीं, वही बच्चे को पिलाया गया। फिर पूरी-तरकारी निकालकर कलेवा किया। लोटे में जो पानी था उससे हाथ-मुँह धोकर डिब्बे से पान निकाले। आराम से पान खाते-खाते गाड़ी में सवार और-और स्त्रियों से बातचीत छेड़ दी।

गाड़ी जब गयपुरा स्टेशन में प्रवेश कर रही थी तब देखा कि प्लेटफ़ार्म पर एक जगह दस-पन्द्रह भले आदमी बाबू लोग खड़े हैं—कोई खड़ताल लिये है, कोई बगल में हारमोनियम

की पेटी दबाये है और दो-चार जनों के हाथ में ऐसे झण्डे हैं जिनमें 'आर्य धर्म की जय', 'ओ३म्' आदि लिखा है। भगवानदेई और रामदुलारी दोनों ही गाड़ी में खिड़की के पास बैठी थीं। माँ की गोद में बैठकर बच्चा भी बड़ी उत्सुकता से बाहर का दृश्य देख रहा था।

गाड़ी जब और भी समीप आ गई तब भगवानदेई और रामदुलारी दोनों ने पहचान लिया कि उस दल में पण्डित गङ्गा-नारायण खड़े हैं। नज़र पड़ते ही दोनों ने मुँह फेर लिया। परन्तु बच्चा अपना छोटा सा हाथ उसी ओर उठाकर बड़ी उमङ्ग के साथ ज़ोर से बोल उठा—बाबूजी—अमाले बाबूजी!

रामदुलारी जो रेशमी साड़ी पहने थी उसी के छोर से चटपट बच्चे के मुँह को ढककर कहने लगी—"चुप रह, शोर मत कर।" पर वह बड़े उद्योग से हाथ-पैर छुड़ाता हुआ कहने लगा—अम बाबू के पाछ दायँगे।

भगवानदेई—चुप रह, बड़ा ख़राब लड़का है—यहाँ कहाँ है तेरा बाबूजी? नहीं, तेरा बाबू नहीं है!

गाड़ी खड़ी हो गई।

रुवासा होकर बच्चा बोला—आँ, अमाले बाबू, बाबू के पाछ जायँगे।

भगवानदेई ने खिड़की से झाँककर देखा, ध्वजापताका-धारी दल उसी ओर आ रहा है। रामदुलारी ने भी देखा। तब वह अपना और बालक का सिर अच्छी तरह ढककर

बेंच के दूसरे सिरे पर सिकुड़कर जा बैठी। भगवानदेई ने उठकर फटाफट खिड़कियाँ बन्द कर दीं।

उस दल के बाबू लोग फुर्ती से इसी गाड़ी के पास आये। ज़नानी गाड़ी देखकर कहा—"चलो जल्दी, और किसी गाड़ी में चलो।" वे दूसरी ओर को लपके। एक मिनिट में गाड़ी छूट गई।

गाड़ी की अन्यान्य स्त्रियाँ इस मामले को आँखें फाड़-फाड़ कर देख रही थीं। कोई कुछ न समझकर एक दूसरी का मुँह देखने लगीं।

रामदुलारी ने घूँघट हटा लिया। बालक को भी छुट-कारा मिला। रामदुलारी का चेहरा ऐसा बदल गया मानों अभी कहीं से चोरी या डकैती करके आ रही हो।

पास ही एक बुढ़िया बैठी माला जप रही थी। उसने इनको सन्दिग्ध भाव से देखकर पूछा—तुम कौन हो बिटिया?

रामदुलारी नीचे देखने लगी। भगवानदेई ने कहा—क्यों?

"यों ही पूछती हूँ। क्या किसी से कोई पूछता नहीं!"

भगवानदेई ने गम्भीर होकर कहा—हम अपना पता-ठिकाना नहीं बता सकतीं।

यह जवाब पाकर गाड़ी में बैठी अन्यान्य स्त्रियों को और भी अचरज हुआ। वे आपस में काना-फूसी करने लगीं और इन्हें देख-देखकर कुछ-कुछ मुसकुराने लगीं।

पर बुढ़िया सहज ही छोड़नेवाली न थी। उसने पूछा—अच्छा, पता-ठिकाना नहीं बतलातीं तो न सही; यह तो बतलाओ जा कहाँ रही हो?

इस जिरह से कुछ चिढ़कर भगवानदेई बोली—हम कानपुर जाती हैं।

"कानपुर जाती हो? साथ में कौन है?"

"भगवान।"

बुढ़िया ज़रा चुप रही और फिर बोली—तो साथ में और कोई नहीं?

भगवानदेई—जो समझो।

बुढ़िया ने दो-चार बार माला फेरकर पूछा—"अभी उस स्टेशन पर जिस बाबू को देखकर बालक बाबूजी-बाबूजी कहकर पुकारता था, वह कौन है?

इतनी देर में अब रामदुलारी ने मुँह खोला। उसने कहा—इस जाँच-पड़ताल से तुम्हारा क्या मतलब है"?

"वह क्या इस बच्चे का बाप है?"

भगवानदेई ने कहा—बौरा गई हो?—बच्चे के बाप का चेहरा क्या ऐसा है? किसी को देखकर उसे किसी की सुधि आ गई है।

बुढ़िया बोली—बालक ने कहा था बाबूजी—तुम कहती हो, वह बाप नहीं है! यह क्या मामला है? मालूम होता है, तुम घर से भागी जा रही हो।

भगवानदेई—अच्छा, यही समझ लो। हमारे साथ तुम भागोगी? कानपुर बड़ा अच्छा शहर है।

यह सुनते ही बुढ़िया क्रोध से गरजकर बोली—क्या कहा! छोटे मुँह बड़ी बात?—हमसे तू ऐसी बात कहती है? मुँहझौंसी—निर्लज्ज—इस गाड़ी में सब भले घरों की बहू-बेटियाँ बैठी हैं। इस गाड़ी में तुम अभागिनें क्यों आईं? ठहरो, गाड़ी रुके तो टिकिट बाबू से कहकर तुम्हें यहाँ से निकलवाये देती हूँ। चली हैं भले घर की बहू-बेटियों के साथ बैठने!

इस नये झगड़े की सम्भावना देख रामदुलारी और भी डर गई। उसने कहा—अच्छा अम्माँ, जाने भी दो। काहे को नाराज़ होती हो? उसने तो यों ही हँसी में कह दिया था।

बुढ़िया बैठी-बैठी अपने आप बड़बड़ाने लगी।

रामदुलारी ने भगवानदेई के कान में कहा—बहन, अब क्या करोगी? वे तो इसी पासवाली गाड़ी में हैं।

भगवानदेई—क्या मालूम, वे इलाहाबाद जा रहे हैं या कहाँ? शायद रास्ते में किसी स्टेशन पर उतर जायँ। शायद कहीं प्रचार करने जा रहे हों।

रामदुलारी—ऐसा हो तभी काम बने। अब तो भगवान् का भरोसा है।

धीरे-धीरे जो ये बातें हुईं इनकी कुछ भनक बुढ़िया के कान में पड़ी। इसलिए अब उसे निश्चय हो गया कि ये भागी जा रही हैं—पास ही बग़लवाली गाड़ी में इस बालक

का बाप बैठा है। पकड़ी जाने के डर से ये व्याकुल हो रही हैं।

इसी समय माँडा-स्टेशन आ गया। गाड़ी खड़ी हो गई। खड़ताल और हारमोनियम की पेटी लिये बाबू लोग गाड़ी से उतरे और ज़नाने डिब्बे के पास होकर चले गये।

उन्हें देख बुढ़िया खड़ी होकर कहने लगी—ए बाबू भैया, सुनो तो।

किन्तु बाबू लोग कुछ सुन न सके। चले गये। तब बुढ़िया ने तुरन्त खिड़की के पास आकर कुली को बुलाकर पूछा—यहाँ गाड़ी कितनी देर ठहरेगी ?

कुली—छः मिनिट।

दरवाज़ा खोलकर बुढ़िया उतर पड़ी। वह भीड़ में झण्डे को देखकर उसी ओर लपकी।

रामदुलारी बोली—सत्यानाश कर दिया। जान पड़ता है, बुलाने गई है।

भगवानदेई ने खिड़की से झाँककर कहा—हाँ, बुलाने ही जा रही है।

रामदुलारी ने घबराकर कहा—तो अब क्या करें ? अभी आये जाते हैं !

भगवानदेई ने उठकर कहा—"आओ जल्दी।" अब वह भी उस डिब्बे से उतर गई और हाथ का सहारा देकर उसने रामदुलारी को भी उतार लिया। जिस तरफ़ बुढ़िया गई

थी उससे उलटी तरफ़ चार-पाँच गाड़ियों के बाद सेकेण्ड क्लास की एक ख़ाली गाड़ी मिल गई। भगवानदेई ने कहा—आओ, इसी में छिपकर बैठ जायँ। फिर तो वे हमें न खोज पावेंगे। इतने में गाड़ी खुल जायगी।

इधर भीड़ में बुढ़िया ने उन बाबुओं के झुण्ड को ढूँढ़ लिया। पास जाकर उसने एक बाबू को हाथ से छूकर कहा—ए भैया, तुममें से किसी की दुलहिन—मालूम नहीं किसकी—कानपुर को भागी जा रही है।

यह बात सुनते ही सभी बुढ़िया के मुँह को देखने लगे। एक ने ज़रा पास आकर पूछा—मैया, तुम क्या कहती हो? कुछ समझ में न आया।

बुढ़िया ने कहा—अरे भाई—मैं नाम तो नहीं जानती पर तुममें से किसी एक की घरवाली, साँवले रङ्ग की, इसी गाड़ी में कहीं भागी जा रही है। गोद में एक बालक है—एक और मिहरारू उसके साथ है।

इस दल के दो-तीन जनों के एक-एक बेटे समेत साँवले रङ्ग की दुलहिन थी। उनका घर भी उसी तरफ़ था। बेड़े के और लोग इन्हीं लोगों की तरफ़ ताकने लगे।

पण्डित गङ्गानारायण ने पास आकर बुढ़िया से कहा—तुम पगली तो नहीं हो?

बुढ़िया ने चिढ़कर कहा—पगली! तुम्हारे कहने से ही पगली हूँ। गाड़ी अब गयपुरा स्टेशन पर धीरे-धीरे आ

रही थी तब तुम लोग प्लेटफ़ार्म पर खड़े थे। हमारी ज़नानी गाड़ी में एक तीन-चार बरस का लड़का तुममें से किसी एक को देखकर 'बाबूजी, बाबूजी' चिल्ला उठा। उसको महतारी रोक ही न सकी। पूछ-ताछ करने से मालूम हुआ कि उस लड़के की माँ और वह स्त्री कानपुर को भागी जा रही है। पकड़ना हो तो मेरे साथ चलो। और अगर पकड़ना न हो तो जाने दो, मेरी बला से। मैं यह चली—गाड़ी अभी छूटी जाती है।

बुढ़िया बिगड़कर फुर्ती से चल दी।

६

बेड़े के लोग एक दूसरे का मुँह देखने लगे। हर एक ने मन में सोचा, हमारी स्त्री नहीं हो सकती, यह बिलकुल असम्भव है—बेड़े के किसी और महाशय की स्त्री होगी, अतएव परोपकारार्थ सभी उत्सुक हो उठे। बाजा, खड़ताल और झण्डा लिये सभी उस बुढ़िया के पीछे हो लिये।

ज़नानी गाड़ी के पास पहुँचकर बुढ़िया बोली—यही गाड़ी है।

दरवाज़ा खोला, भीतर घुसकर देखा तो वहाँ से वे ग़ायब हैं। बाबुओं ने पास जाकर पूछा—कहाँ है, दिखाओ।

बुढ़िया ने कहा—बैठी तो इसी गाड़ी में थीं, कहीं उतरकर भाग गई हैं।

बेड़े के एक और बाबू ने कहा—देखा न आपने? मैंने तभी कह दिया था कि बुढ़िया सनक गई है। नाहक़ हम लोगों को यहाँ तक हैरान किया।

एक स्त्री बोली—वे अभी यहाँ से उतरकर उस तरफ़ एक गाड़ी में चढ़ गई हैं।

"तुमने देखा है?"

"हाँ, अपनी आँखों देखा है। यही—इसी में।" उँगली के इशारे से उसने एक सेकेण्ड क्लास की गाड़ी दिखला दी।

अब बेड़े के सभी लोग उसी तरफ़ लपके। गाड़ी छूटने की घण्टी भी बज गई।

जो बाबू सबके आगे थे वे सेकेण्ड क्लास की उस गाड़ी के नज़दीक पहुँचे। खिड़की में भीतर सिर डालकर उन्होंने हाथ के इशारे से साथियों को बुलाया—यहीं हैं, यहीं हैं—इधर आओ।

गार्ड ने सीटी बजाकर ड्राइवर को हरी झण्डी दिखलाई।

साथी लोग दौड़ते हुए आ पहुँचे। वे पन्द्रहों आदमी धक्कामुक्की कर उस कमरे में घुस गये। गाड़ी भी सीटी बजा कर दौड़ने लगी।

भीतर खड़े होकर उन लोगों ने बेञ्च के बिलकुल दूसरे छोर पर बैठी हुई दो स्त्रियों को देखा। उनका सारा शरीर कपड़ों से ढका-मुँदा था। एक की गोद में बालक था। जूता-मोजा-समेत बालक के दोनों पैर आँचल से बाहर लटक रहे थे।

वे लोग आपस में पूछने लगे—"किसकी स्त्री है?" सभी अचरज से उन स्त्रियों को ताकने लगे।

गाड़ी की खिड़कियाँ बन्द थीं, इससे कमरे में इतने आदमियों के साँस छोड़ने से बहुत गरमी मालूम होने लगी। इस कारण एक बाबू ने कुछ खिड़कियाँ खोल दीं।

एक बाबू ने ज़रा ज़ोर से कहा—हाँ, आप किसकी स्त्री हैं?

बिलकुल चुप, कुछ भी उत्तर न मिला। कुछ देर तक उत्तर की प्रतीक्षा करके एक दूसरे बाबू ने पूछा—आप कहाँ से आ रही हैं, और कहाँ जायँगी? हमें साफ़-साफ़ बतलाइए। यह लज्जा करने का समय नहीं है।

इतने पर भी दोनों स्त्रियाँ कठपुतली की भाँति बैठी रहीं। किसी ने कुछ उत्तर न दिया।

एक तीसरे बाबू ने कहा—आपका रँग-ढँग अच्छा नहीं मालूम होता। सुना है, आप भागी जा रही हैं। यह बड़ी बेजा बात है। अपना परिचय दो, पता-ठिकाना बतलाओ, नहीं तो अगले स्टेशन पर आप पुलिस के सिपुर्द कर दी जायँगी।

भगवानदेई अब और बर्दाश्त न कर सकी। वह क्रोध के कारण खड़ी हो गई। उसने ज़रा घूँघट हटाकर कहा—क्या कहा? आप लोग हमें गिरफ़ार करा देंगे! ठहरिए, अगले स्टेशन पर गाड़ी रुके; फिर देखती हूँ, कौन किसको

पुलिस के हवाले करता है। आप ज़नानी गाड़ी में किस बिरते पर घुस आये हैं ? मालूम नहीं ज़नानी गाड़ी में घुसने से मर्द को क्या होता है ?

यह बात सुनते ही बाबू लोग कुछ चञ्चल हो उठे। एक ने कहा—तो क्या यह ज़नानी गाड़ी है ?

एक बाबू दरवाज़े के पास ही थे। उन्होंने खिड़की से झाँककर बाहर लगा हुआ लेबिल देखा और कहा—हाँ, लेडीज़ लिखा हुआ मालूम पड़ता है।

भगवानदेई ने पहले अटकल से ज़नानी गाड़ी कह दिया था अब उसे पूरा मौक़ा मिल गया। फिर पहले की तरह क्रोध का ढोंग करके बोली—

"आप लोग बुरे चालचलन के उद्दण्ड आदमी हैं। दो स्त्रियाँ यहाँ असहाय अवस्था में बैठी हैं, आप क्या समझकर ठेल-ठालकर इस गाड़ी में चढ़ आये ? आपने ज़रूर कोई नशा किया है ?"

भगवानदेई बाबुओं की ओर सिंहनी की तरह देखने लगी।

एक बाबू ने कहा—आप ऐसी बात न कहें। हममें से कोई भी नशा नहीं करता। शराब को तो कोई छूता भी नहीं। हमारी यह राय है—मद्यमपेयमदेयमग्राह्यम्।

भगवानदेई ने और भी कड़े स्वर से कहा—शराब न पी होगी तो ताड़ी पी ली होगी। गड़बड़ करने की नियत से ज़नानी गाड़ी में घुसने से जो मज़ा मिलता है उसे आज

आप लोग अच्छी तरह से चक्खेंगे। मालूम होता है, आप लोगों में से किसी एक के भी पास दूसरे दर्जे का टिकट नहीं है।

दूसरे दर्जे का तो था ही नहीं—किसी भी दर्जे का टिकट किसी के पास न था। माँड़ा में प्रचार करने की इच्छा से ये लोग गयपुरा स्टेशन से माँड़ा का इण्टर क्लास का टिकट लेकर आये थे। भगवानदेई की डाँट-डपट सुनकर सभी सकपका गये। बहुतों के चेहरों पर डर के मारे हवाइयाँ उड़ने लगीं। एक ने हिम्मत करके कहा—देखें भला आपके पास किस दर्जे के टिकट हैं?

भगवानदेई बोली—टिकट देखिएगा? ठहरिए—गाड़ी रुके—पुलिस को बुलाकर आपको भली भाँति टिकट दिखाऊँगी। मेरे पास जो ये बैठी हैं, ये किसकी स्त्री हैं, आप जानते हैं? ये जिनकी गृहिणी हैं वे यदि चाहें तो आप में से हर एक को एक-एक बरस के लिए बड़े घर की हवा खिला सकते हैं। घुग्घू देखने आये थे इस मर्तबा फन्दा देखिए।

बाबू लोग आपस में ही कहने लगे—मालूम पड़ता है, वे किसी जज या मजिस्ट्रेट की पत्नी हैं।

एक बाबू ने ज़रा नम्रता से कहा—हम लोग किसी बुरे इरादे से तो आये नहीं हैं।

"यह अदालत में साबित कीजिएगा कि किस इरादे से आये थे।"

अब तक पण्डित गङ्गानारायण चुपचाप खड़े थे। जब मामला इतना बढ़ गया तब उन्होंने और चुप रहना ठीक न समझा। उन्होंने सोचा कि उस पगली बुढ़िया की बातों मे आकर सचमुच बेजा काम कर बैठे हैं। अब इनकी खुशामद करने के सिवा और कोई उपाय नहीं। प्रचार करने आकर पुलिस के पञ्जे में फँसना—हवालात की सैर करना—कुछ मज़े की बात नहीं है। यह सब सोच-विचारकर उन्होंने उस घूँघटवाली को लक्ष्य कर ज़ोर से कहा—हम लोगों से बड़ी भूल हुई है। कृपा कर हम लोगों को क्षमा कीजिए। अगले स्टेशन पर हम लोग उतर जायँगे। हम आपके पैरों पड़ते हैं, हमें क्षमा कीजिए—भगवान् जानता है—किसी तरह हमारी बुरी नियत न थी।

बात पूरी होते न होते चादर में छिपा, माता की गोद में बैठा बालक ज़ोर से चिल्ला उठा—बाबूजी।

पण्डित गङ्गानारायण ने कहा—कौन है, भैया ?

चादर के भीतर से "ऊ—ऊ—ऊ" एक आवाज़ हुई जैसे किसी ने बालक का मुँह दबा लिया हो। बालक ज़ोर-लगाकर जूता समेत दोनों पैर चलाने लगा। माँ-बेटे के बीच यथारीति द्वन्द्व-युद्ध होने लगा। माँ की चादर चीर-फाड़कर बालक कूद पड़ा। पण्डित गङ्गानारायण ने देखा—उनकी स्त्री रेशमी साड़ी पहने है, माथे में रोली की बिन्दी लगाये है, गले में फूलों की माला पड़ी है जिसमें रोली लगी है—

रोली में लिपटे हुए कुछ फूल आँचल से खुलकर गाड़ी में गिर पड़े।

पण्डित गङ्गानारायण स्तम्भित हैं। बालक दौड़कर उनके घुटनों से लिपट गया। अन्यान्य बाबू लोग अचरज करके इस दृश्य को देखने लगे।

गङ्गानारायण ने कहा—बेटा, तुम कहाँ गये थे?

बालक ने बड़े उत्साह से सिर हिलाकर कहा—देवी मैया को पूदने गअे ते। मैं ता, माँ ती और मौछी ती। देवी माई का चोला वला अच्छा अै। बली अच्छी देवी अै।

रामदुलारी अब घूँघट निकाल बेंच पर सुन्न होकर बैठ रही। भगवानदेई का भी यही हाल हुआ। उसने तभी तक बातें छाँटीं जब तक वह समझती रही कि कोई मुझे पह-चान थोड़े सकेगा। अब फँस जाने पर लज्जा के मारे मर सी गई। जो और-और बाबू लोग खड़े थे वे यह घटना देखकर दङ्ग रह गये। उनमें से कोई तो पण्डित गङ्गा-नारायण को व्यङ्ग की और कोई सहानुभूति की दृष्टि से देखने लगा।

ट्रेन की चाल धीमी हो रही थी—धीरे-धीरे 'मेजा' में आकर ठहर गई। और-और बाबू लोग खट-खट नीचे उतर गये। पण्डित गङ्गानारायण 'हा जगदीश्वर' कह सिर से हाथ लगा करके बीच की बेञ्च पर बैठ गये। गाड़ी ने स्टेशन छोड़ दिया।

बालक नीचे से फूल उठा-उठाकर पिता के पास रखने और कहने लगा—"लो बाबूजी।" पण्डित गङ्गानारायण ने एकाएक दाँत पीसकर फूलों को मुट्ठी में भरकर खिड़की से बाहर फेंक दिया। पिता के क्रोध का कारण न समझकर वह बालक अपराधी की तरह उनके मुँह को ताकने लगा।

पण्डित गङ्गानारायण ने दो-एक मिनट बैठकर एक लम्बी साँस छोड़ी। फिर वे आँखें मूँदकर बेञ्च पर लेट रहे।

ज़रा ठहरकर भगवानदेई ने डर से रामदुलारी के कान में कहा—बेहोश तो नहीं हो गये?

तब रामदुलारी धीरे-धीरे स्वामी के पास आई। उसने उनके माथे को हाथ लगाकर पूछा—तबीअत कैसी है? लेट क्यों रहे?

पण्डित गङ्गानारायण ने कुछ उत्तर न दिया। सिर्फ़ एक लम्बी साँस ली।

स्वामी के सिरहाने बेञ्च पर बैठकर रामदुलारी धीरे-धीरे उनके माथे पर हाथ फेरने लगी। तनिक ठहरकर कहा—नाराज़ हो गये हो!

पण्डित गङ्गानारायण ने आँखें मूँदे-मूँदे पूछा—तुम्हारे साथ वह कौन है?

"भगवानदेई हैं। उन्हीं के घर गई थी।"

पण्डित गङ्गानारायण ने धीमे स्वर में पूछा—किस काम से गई थीं?

रामदुलारी—तुम घर में न थे। अकेले में जी ऊबता था। वे मइके जा रही थीं। कहने लगीं, दो दिन के लिए चलो न, घूम-फिर आवें। इसी से चली गई थी।

पण्डित गङ्गानारायण ने आँखें खोल दीं। कोई आधे मिनट तक विषण्ण भाव से स्त्री की ओर देखते रहे। अन्त में कहा—तुम्हारे माथे में यह काहे की बिन्दी है? लिपटे हुए वे फूल क्यों लाईं—कहाँ से लाईं?

रामदुलारी ने कहा—वह—वह तो—बच्चे के खेलने को लेती आई थी।

स्त्री के मुँह से ये मिथ्या बातें सुनकर गङ्गानारायण के मुँह और नेत्रों पर घृणा का भाव झलकने लगा। उन्होंने कहा—तो तुम्हारे माथे में जो बिन्दी लगी है उससे भी बालक खेलेगा? और तुम्हें यह रेशमी साड़ी कहाँ मिली!

रामदुलारी—भगवानदेई ने यों ही ज़िद करके पहना दी थी।

गङ्गानारायण—हिन्दू स्त्रियाँ ऐसी साड़ियों को अक्सर नहा-धोकर पूजा करने के लिए पहनती हैं। हमें सच-सच बतलाओ कि इस साड़ी को पहनकर कहाँ गई थीं, और क्या-क्या कर आई हो। जो काम कर चुकी हो वही क्षमा करने लायक़ नहीं। झूठ बोलकर अपराध को कहीं और न बढ़ा लेना।

रामदुलारी ज़रा देर चुप रही, फिर भभूत मँगाने की सलाह से लेकर अन्त तक की सब बातें कह सुनाईं।

सुनकर, गङ्गानारायण रोते-रोते कहने लगे—तुम्हारे मन में आख़िर यही था! इतने दिनों से तुम्हें जो इतना सिखाया-समझाया और उपदेश दिया था वह सब वृथा हुआ—राख में घी होमा गया! धर्मबन्धुओं के आगे आज तुमने हमारा मुँह काला किया! समाज में मुँह दिखलाने के लिए तुमने कोई उपाय न रहने दिया!

रामदुलारी—तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे माफ़ करो। बिलकुल सङ्कट में फँस जाने पर मैंने यह काम किया था। जो भस्म न मँगाती तो फिर मैं तुम्हें कैसे पा सकती?

गङ्गानारायण—उस पौत्तलिक ढोंग से अभिमन्त्रित भस्म को छाती में लगवाकर चङ्गे होने की अपेक्षा हमारा मर जाना ही अच्छा था।

गाड़ी इलाहाबाद स्टेशन पर आ गई।

सम्पादक की आत्म-कहानी

१

हम अपने असली नाम को छिपाकर इस आत्म-कथा के उपलक्ष में एक नकली नाम का व्यवहार करने की इच्छा करते हैं—मान लीजिए, हमारा नाम गङ्गाधर तिवारी है। हम एक मासिक पत्र के मालिक और सम्पादक हैं। हम अपने पत्र का नाम भी गुप्त रखकर उसके स्थान पर लिखेंगे "आद्या-शक्ति"। हमने जो यह कपट किया है, इसके लिए हम उभय-कर बद्ध कर पाठकों से क्षमा-याचना करते हैं। क्योंकि आज हम जो आत्मकथा लिखने बैठे हैं उसमें हमारी बुद्धिमानी, शूरता, वीरता आदि गुणावली का रत्ती भर भी परिचय नहीं है—बल्कि इसके विपरीत ही है। हमारा असली नाम सुनते ही प्रायः अनेक लोग पहचान लेंगे, क्योंकि हिन्दी-साहित्य में हमारा आदर कुछ ऐसा-वैसा नहीं है। हमारा पत्र भी यथेष्ट नाम कमा चुका है।

किन्तु वर्तमान हिन्दी-साहित्य का दुर्भाग्य यह है कि नाम जितना होता है उसके उपयुक्त रुपया-पैसा हाथ नहीं लगता। दिवाली सिर पर है—छापेखानेवालों का रुपया देना होगा, काग़ज़वाले का भी हिसाब करना है, हमारे पत्र के लिए जिस

दूकान में चित्रों के ब्लाक बनते हैं उस दूकान का मैनेजर तक़ाज़े पर तक़ाज़े करके हमें धैर्यच्युत कर रहा है। इधर रोकड़ कुछ नहीं। इसी से, बहुत सोच-विचार करके लम्बे-चौड़े रङ्गीन काग़ज़ पर ख़ूब भड़कीला नोटिस छपवाकर इलाहाबाद भर में बँटवा दिया। दूसरे शहरों में और बड़े-बड़े क़सबों में भी उसके प्रचार की व्यवस्था कर दी। उस विज्ञापन में लिखा कि इस साल 'आद्याशक्ति' को और-और वर्षों की अपेक्षा कई हज़ार (ठीक स्मरण नहीं, कितने हज़ार लिखा था) अधिक छपाने पर भी समस्त ग्राहकों की माँग पूरी नहीं की जा सकती। चम्बल की भयङ्कर बाढ़ की तरह जिस भाँति ग्राहक-संख्या बढ़ रही है उसको देखते हुए भरोसा नहीं कि अधिक दिनों तक नवीन ग्राहकों को पत्र के सभी अङ्क दिये जा सकें। अतएव जो लोग 'आद्याशक्ति' के नूतन ग्राहक होना चाहें वे बिना विलम्ब किये पत्र लिखें, इत्यादि, इत्यादि।

किन्तु वास्तव में बात ऐसी न थी। नूतन ग्राहक प्रायः हो नहीं रहे थे, और 'आद्याशक्ति' के बिना बिके अङ्कों का ढेर घर में स्थान-सङ्कीर्णता की वृद्धि कर रहा था। परन्तु इस प्रकार के मिथ्या-भाषण में पाप नहीं है। मनु ने कहा है—'ब्राह्मण की प्राण-रक्षा के लिए मिथ्या बोला जा सकता है।' जो इस प्रकार आडम्बर के साथ विज्ञापन न दें तो हमारा पत्र न चलेगा, और पत्र न चलेगा तो हमारी प्राण-

रचा न होगी; क्योंकि यह पत्र ही हमारी एक-मात्र जीविका है, और यह बात झूठ नहीं कि हम एक कुलीन ब्राह्मण हैं।

सप्ताह के भीतर ही हमें विज्ञापन-वितरण करने का फल मिलने लगा। कई नये आर्डर (पत्र भेजने के आज्ञा-पत्र) आये; रुपये से भेट होने लगी। बाज़ार का देना बहुत कुछ चुक गया। बाक़ी रुपया इसलिए बचा रक्खा कि दिवाली के अवसर पर कहीं सैर करने जायँगे।

जिस समय की बात कह रहे हैं उस समय स्वदेशी-आन्दोलन ज़ोर-शोर से हो रहा था। इससे हिन्दी-साहित्य के मृत कलेवर में भी भाव का ज्वार-भाटा आ गया। 'आद्या-शक्ति' के प्रत्येक नम्बर में हम भी अनेक लेख, तुकबन्दियाँ, गीत आदि छापने लगे। मुंशी रामप्रसाद के बाग़ में और वेणी-किनारे पर प्रतिदिन तुमुल वक्तृताएँ होती थीं—कई एक सभाओं में हमने भी वक्तृता दी थी। अन्त में बाबू अश्विनीकुमार दत्त, विपिनचन्द्र पाल आदि जन-नायक देशान्त-रित हुए; और गरम अफ़वाह उड़ी कि शिमला-शैल पर एक नूतन सूची तैयार हो रही है—और भी कुछ विख्यात लोगों को डिपोर्ट किया जायगा।

'आद्याशक्ति' का दिवाली का नम्बर प्रकाशित हो गया। अगहन के अङ्क की कापी छापेख़ाने में देकर देश-भ्रमण करने जायँगे—प्रातःकाल आफ़िस में बैठकर हम लेखनिर्वाचन कर रहे थे। बाबू देवीसिंह का एक धारावाहिक उपन्यास 'आद्या-

शक्ति' के प्रत्येक नम्बर में निकल रहा था। अगहन के अङ्क के लिए उपन्यास का अंश भेज देने को हम तार लिख रहे थे। इसी समय एक अपरिचित युवा, ढीली कमीज़ के ऊपर रेशमी चादर ओढ़े, हाथ में छतरी लिये दफ़्तर में आया। उसने पूछा—क्या श्रीमान् ही पण्डित गङ्गाधरजी हैं?

"क्या आज्ञा है"—हमने सोचा, कोई नवीन ग्राहक बनने आया है। चार रुपये मिलेंगे।

युवा हमको प्रणाम कर, बिना ही कहे, बगल में पड़ी हुई बेञ्च पर बैठ गया। साथ ही बोला—बहुत दिनों से आपका दर्शन करने की लालसा थी। आप तो देश-विख्यात पुरुष हैं। आज बड़ा अच्छा दिन है जो आपके दर्शन हुए।

हमने विनय-सुचक मृदु हास्य करके कहा—आपका शुभ नाम?

"मैं एक साधारण अज्ञात मनुष्य हूँ। नाम से आप मुझे पहचान न सकेंगे। मैं देहात में रहता हूँ। इस समय एक काम से प्रयाग आया था। 'आद्याशक्ति' में आपके लेख पढ़-पढ़कर आपके ऊपर बड़ी श्रद्धा हो गई है। इसी से सोचा, एक बार चलकर बातचीत भी करता चलूँ। आपके सदृश लोग इस देश में विरले हैं।"

देखा कि ग्राहक होने के लक्षण नहीं हैं। जी खट्टा हो गया, किन्तु उसके मुँह से स्तुति सुनकर हम प्रसन्न भी

हुए। किञ्चित् सलज्ज हास्य करके कहा—मैं तो बहुत ही साधारण व्यक्ति हूँ—मेरी योग्यता ही कितनी?

उसने कहा—आपके ऐसे दो-चार 'साधारण व्यक्ति' यदि इस देश में होते तो चिन्ता ही किस बात की थी? मालूम नहीं, और लोग क्या समझते होंगे; किन्तु मेरा तो यह विश्वास है कि इस स्वदेशी-आन्दोलन को आद्याशक्ति ने ही जगा रक्खा है।

मैं—जितना हो सकता है, देश का कुछ काम करने की चेष्टा किया करता हूँ।

बाबू—आजकल 'आद्याशक्ति' ही हिन्दी में प्रधान मासिक पत्रिका जँचती है।

कुछ विनय-सूचक हास्य करके मैंने कहा—हमारा कुछ कहना शोभा नहीं देता; किन्तु आजकल बहुतों के मुँह यही सुना जाता है। गत सप्ताह का 'विश्वदूत' देखा है?

"नहीं तो—क्या लिखा है?"

"हमारे दिवालीवाले अङ्क की आलोचना की है"—कह कर हमने दराज़ से 'विश्वदूत' निकालकर बाबू को दे दिया। उसमें यही बात थी—आद्याशक्ति ही इस समय हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका है। किन्तु सच तो यह है कि यह उक्ति विश्वदूत की न थी—स्वयं हमारी थी। क्योंकि समालोचना के लेखक हमीं हैं।

युवा ने पढ़कर पत्र को टेबिल पर रख दिया और कहा—वाह, खूब लिखा है। ठीक लिखा है। अच्छा महाशय, किस श्रेणी के पाठकों में 'आद्याशक्ति' का विशेष प्रचार है?

हमने बड़े उत्साह से कहा—देश के अधिकांश गण्यमान्य प्रतिष्ठित लोग ही हमारे ग्राहक हैं। यहाँ बर्मा से लेकर पेशावर तक, जहाँ-जहाँ हिन्दी-भाषा-भाषी हैं वहीं, आद्याशक्ति का आदर है।

बात हमने बहुत बढ़ाकर कही थी। हम केवल कागज़ पर छपाकर ही विज्ञापन नहीं बाँटते—किन्तु अवसर मिलने पर मुखाग्र भी विज्ञापन का प्रचार कर देते हैं।

युवा बोला—यह तो होगा ही, होना ही चाहिए। हमने भी देखा है कि आद्याशक्ति में ऐसे-ऐसे लेख निकले हैं कि कालेज के लड़के मतवाले हो उठे हैं।

"जी हाँ, कालेज-विद्यार्थियों में भी हमारे यथेष्ट ग्राहक हैं। पहले इतने अधिक न थे। जबसे स्वदेशी-विषयक लेखों का निकलना आरम्भ हुआ है तभी से कालेज-विद्यार्थी धड़ाधड़ ग्राहक हो रहे हैं।"

बाबू ने पाकेट से घड़ी निकालकर देखते हुए कहा—अच्छा, पण्डितजी महाराज, क्या मैं एक बात पूछ सकता हूँ?—आद्याशक्ति के कितने ग्राहक हो गये हैं?

कुछ सोचने का ढोंग करके मैंने कहा—ठीक स्मरण नहीं।

"दस हज़ार से अधिक होंगे न?"

भ्रू-युगल कुञ्चित करके ऐसा भाव दिखलाया मानो बहुत हिसाब कर रहा हूँ। फिर कहा—नहीं, अभी दस हज़ार तो नहीं हुए।

सचमुच नहीं हुए। आधे भी नहीं हुए। चौथाई हुए हैं या नहीं, इसमें भी सन्देह है। किन्तु न मालूम क्यों उसने मान लिया कि दस हज़ार पूरे होने में अब और विलम्ब नहीं है। वह बोला—ओह, नौ हज़ार से ऊपर हैं! और किसी हिन्दी मासिक-पत्र के ग्राहक नौ हजार नहीं हुए।

ज़रा नक़ली हास्य करके कहा—अजी आधे भी नहीं।

तब उसने धीरे-धीरे पाकेट से काग़ज़ की नत्थी निकाली। ज़रा खाँसकर मुसकुराते हुए उसने सङ्कोच के साथ कहा—"मैंने स्वदेशी-विषयक दो प्रबन्ध लिखे हैं। क्या ये आद्याशक्ति मे स्थान पा सकेंगे?" उसने काग़ज़ हमारे सामने रख दिये।

हमने मन ही मन हँसकर सोचा—अच्छा, यह बात है!—तुम्हारा उद्देश्य इतनी देर के बाद प्रकट हुआ। इतने चक्कर न काटकर पहले ही सीधी तरह बतला देते तो भी काम हो जाता! तुम्हारे ये लेख यदि रविश हों तो अलौकिक पुरुष कहने से ही क्या हम इन्हें छाप देंगे?

दोनों लेखों को उठाकर सफ़हे उलट-पलटकर देखा, अन्त में हस्ताक्षर हैं—श्री मनमोहनलाल गुप्ता के। हमने कहा—अच्छा, छोड़ जाइए; समयानुसार देखेंगे। छापने लायक़ होंगे तो अवश्य छाप दिये जायँगे।

"यदि पसन्द आ गये तो अगहन की संख्या में निकल सकेंगे न ?"

"अगहन में ?—अगहन की कापी तो एक तरह से तैयार हो गई है। पूस के बाद—?"

युवक खड़ा हो गया था। बोला—अच्छा, देखिएगा। न हो तो पूस में ही छापिएगा। पण्डितजी, आज आपके साथ सम्भाषण करने से सचमुच बड़ा आनन्द हुआ। क्षमा कीजिएगा, मैंने आपका अमूल्य समय नष्ट कर दिया। अब आज्ञा है न—वन्दे मातरम्।

'वन्दे मातरम्'—कहकर हम कुर्सी से दो इंच उठकर फिर बैठ गये।

युवक भी द्वार से बाहर हो गया—और साथ ही प्रवेश किया हमारे सहकारी सम्पादक कालिकादीन ने। दिवाली के अङ्क की समालोचना अँगरेज़ी में लिखकर एक दैनिक पत्र मे प्रकाशित कराने के लिए उस पत्र के आफ़िस में कालिका-दीन सुकुल को भेजा था। अतः प्रवेश करते ही हमने पूछा—क्यों जी, क्या हुआ ?

कालिकादीन—कल सबेरे प्रकाशित हो जायगी। मैं स्वयं बैठकर अपने आगे कम्पोज़ करा आया और प्रूफ़ भी पढ़ आया हूँ। यह आदमी किस काम से आया था।

"कौन ? मनमोहनलाल ?"

"इसका नाम क्या मनमोहनलाल है ? मालूम होता है, आपको उसी ने बतलाया है।"

"नहीं, मुँह से नहीं कहा ; अपने लिखे बताकर ये प्रबन्ध दे गया है—इनमें नीचे नाम लिखा है श्रीमनमोहनलाल गुप्त।"

कालिकादीन ने उत्तेजित स्वर से कहा—उसका सिर ! उसके सात पुरुषाओं का नाम भी मनमोहनलाल गुप्ता नहीं है।

हमने विस्मित होकर पूछा—तो फिर वह कौन है ?

"डिटेक्टिव। उसका नाम है उल्फ़तराय।"

हमने डरकर कहा—डिटेक्टिव ? कहते क्या हो ! मालूम होता है, कुछ धोखा खा गये हो।

कालिकादीन ने ज़ोर के साथ कहा—हाँ, वह जासूस है। हम उसे अच्छी तरह पहचानते हैं। पचासों बार उसे हम कोतवाली में आते-जाते देख चुके हैं। कहते क्या हो ?

यह सुनकर हम हाथ पर सिर रखकर बैठ गये। एक तो यह नई फ़ेहरिस्त की अफ़वाह—दूसरे कितनी ही झूठ बातें कहकर हमने 'आद्याशक्ति' के सम्बन्ध में उसके मन में एक भ्रान्त धारणा उत्पन्न करा दी थी। अब वह इसके भी ऊपर पुलिसोचित रङ्ग चढ़ाकर न जाने कैसी भीषण रिपोर्ट दाखिल करेगा—यह सोचकर हृत्कम्प होने लगा।

कालिकादीन हमारे मन की बात समझ गया। बेञ्च पर बैठकर बोला—क्या-क्या बातें हुईं, हमें सब सुनाओ तो।

जहाँ तक स्मरण कर सके—सब बातें कालिका को सुना दीं। सुनकर वह भी हाथ पर ठोढ़ी का सहारा दिये बैठा रह गया। एक लम्बी साँस छोड़कर बोला—"काम अच्छा नहीं हुआ। वक्त नाज़ुक है।" फिर टेबिल पर से वही काग़ज़ उठाकर पढ़ने लगा।

कुछ देर में दोनों लेख पढ़कर अन्त में कहने लगा—देखी पाजी की चालाकी ?

"क्या ?"

"अजी सर्वनाश!—क्या इसी का नाम प्रबन्ध है ? यह तो बिलकुल ही आग है! इसको छापने के साथ ही एक जोड़ा हथकड़ियाँ तैयार हैं।"

"कहते क्या हो ?"

"सुनिए न ?"—कहकर उसने दोनों लेखों के कुछ अंश हमें पढ़कर सुना दिये।

"सत्यानाश! मालूम होता है, हमको फँसाने के लिए ही दोनों लेख रख गया है। लाओ, फाड़कर फेंक दें।" हमने दोनों लेखों को फाड़कर वेस्ट पेपर-बास्केट में डाल दिया।

कालिकादीन—यदि ये प्रकाशित हो जायँ तो चटपट हमारे विरुद्ध १२४ ए० दफ़ा—और पाँच वर्ष के लिए बड़ा घर तैयार है। इन्हें सिर्फ़ फाड़कर फेंक देने से काम न चलेगा। इन्हें चूल्हे में छोड़ आइए ताकि बिलकुल भस्म हो जायँ। क्या जाने, कहीं हमारे दफ़्तर की तलाशी करवा दे और इन

सब टुकड़ों को क्रम से चिपकाकर हमारे विरुद्ध भयङ्कर प्रमाण तैयार कर दे।

"ठीक कहते हो सुकुलजी। उस रास्केल का यही मतलब जान पड़ता है।"—फिर लेख के एक-एक टुकड़े को सावधानी से उठाकर हम भीतर ले गये और जलते हुए चूल्हे में झोंक आये।

नहा-धोकर पूजा-पाठ किया और कलेवा करके दफ़्तर में आये तो देखा कि कालिकादीन बैठा-बैठा खूब मन लगाकर सिर झुकाये लिख रहा है। चार-पाँच ताव लिखे हुए टेबिल पर रक्खे हैं। हमने पूछा—यह क्या हो रहा है?

"लेख लिख रहा हूँ।"

"कौन सा लेख?"—लिखे हुए काग़ज़ उठाकर हम पढ़ने लगे। देखा कि मिस्टर सुकुल ने अँगरेज़-सरकार की असाधारण न्याय-परता, अपार सदाशयता और आदर्श प्रजा-वत्सलता आदि सद्‌गुणों की व्याख्या करके लम्बे-चौड़े एक परम रमणीय स्तोत्र की रचना की है। और जो अपरिणाम-दर्शी अज्ञ लोग ऐसी महानुभाव पितृ-मातृ-तुल्य सरकार के विपक्ष में हैं उनको बेहद गालियाँ सुनाई हैं। लेख को पढ़कर हम मन ही मन हँसे। समझ लिया कि उस डिटेक्टिव के कौशल को विफल करने के लिए यह मिस्टर सुकुल की चाल है। लेख को समाप्त कर सब सफ़हों को बराबर किया और कोने में छेद कर धागा पिरोकर उन्हें बाँध दिया।

फिर हमसे कहा—"लिख दीजिए—'स्वीकृत अगहन की संख्या के लिए'—लिखकर दस्तखत कर दीजिए।"

यही लिख कर हमने हस्ताक्षर कर दिये। कालिकादीन हमारी बुद्धि है, बल है; कालिकादीन हमारा दाहिना हाथ है। लेख को दराज़ में रखकर उसने कहा—समय हो चुका, अब घर जाऊँ। नहाऊँ, धोऊँ, भोजन करूँ।

हम—एक काम न करो। यहीं स्नान, पूजन और भोजन कर लो। तुम तो खान-पान में बन्धन नहीं मानते, इस काम के लिए अब घर न जाओ। क्या जाने, कहीं पुलिस-बुलिस आ जाय। तुम्हारे मौजूद रहने से बड़ी हिम्मत रहती है।

कुछ टालमटोल करके कालिकादीन ने कहा—पण्डितजी, क्या करूँ। आज ठहर नहीं सकता। घर मेहमान आये हैं। मैं न जाऊँगा तो—

"अच्छा तो जाओ। किन्तु उस वक़्त ज़रा जल्दी आ जाना।"

"ज़रूर आऊँगा"—कहकर उसने प्रस्थान किया।

२

कालिकादीन जो गया सो फिर लगातार तीन दिन तक उसकी सूरत न देख पड़ी। हमारे ये तीन दिन बड़े ही भय और आशङ्का के साथ बीते। 'पतति पतत्रे विचलति पत्रे'—मन में ऐसा जान पड़े मानो अब पुलिस आई। गली के मोड़ पर लाल साफ़े पर नज़र पड़ते ही हम काँप उठते थे।

आप पूछ सकते हैं कि हम लोग जेल से इतने क्यों डरते हैं? सुनिए, बतलाते हैं। पहले जेल में न तो धर्मविचार है और न जाति-पाँति का ही भेद-भाव है। हम ब्राह्मण की सन्तान हैं। बिना त्रिकाल-सन्ध्या किये पानी नहीं पी सकते। जेल में सन्ध्या-पूजा करने के लिए कुशासन कहाँ पावेंगे और थोड़ा सा गङ्गाजल ही कौन ला देगा? हम चाहे जिसके हाथ का खाते-पीते नहीं। या तो अपने घर के लोगों के हाथ का खाते हैं या रिश्तेदारों के हाथ का और ऐसे लोगों के हाथ का भी कि जिनके ब्राह्मणत्व में हमें तिल भर भी सन्देह नहीं है। जेल में हमारे इस नियम का निर्वाह कैसे होगा? दूसरा कारण यह है कि हमारी ब्राह्मणी को विधवा होने में घोरतर आपत्ति है। बहुत दिनों के लिए जेल जाना पड़ा तो यह निश्चय है कि हम ज़िन्दा न लौटेंगे। हमारी उम्र हो चुकी, इधर स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहता। जेल का खाना खाकर भला कितने दिन बच सकेंगे! हमारे मर जाने पर, हमारी ब्राह्मणी की क्या दशा होगी और हमारे नाबालिग़ बेटा-बेटी कहाँ आश्रय पावेंगे? इन दो बाधाओं के मारे हमारे लिए जेलखाना अत्यन्त असुविधा-जनक है—इसी से हम अपनी जेलभीति को अहैतुकी नहीं मानते। यह सामान्य भय नहीं है—सुदुर्लभ परिणाम-दर्शिता है।

जो हो, जैसे-तैसे तीन दिन कट गये, किसी विपत्ति से सामना नहीं करना पड़ा। खानातलाशी होनी होती तो अब तक हो गई होती। बहुत कुछ ढाढ़स हो गया।

चौथे दिन कालिकादीन के आने पर पूछा—क्यों जी, इतने दिन कहाँ रहे ? आये नहीं ?

"घर में ही था। कुछ तलाशी-वलाशी तो नहीं हुई ?"

"नहीं। जान पड़ता है, उसी के डर से नहीं आते थे।"

"पण्डितजी, डर के मारे नहीं, भविष्यत् के विचार से नहीं आया। मान लीजिए कि यदि पुलिस आती और आपके साथ ही हमें गिरफ़ार कर ले जाती तो फिर बतलाइए, 'आद्याशक्ति' की क्या दशा होती ? पत्रिका बन्द हो जाती, आपकी इतनी विशाल कीर्ति का लोप हो जाता और हिन्दी-साहित्य की अपरिमित हानि होती।"

परिणाम-दर्शिता के सम्बन्ध में कालिकादीन हमारा उपयुक्त शिष्य है। 'आद्याशक्ति' को कालिकादीन प्राण से भी अधिक चाहता है। किन्तु इस अवसर पर यदि उसका प्रेम पत्रिका पर कुछ कम और हम पर कुछ अधिक होता तो मन को प्रसन्नता होती।

कालिकादीन ने मुँह फुलाकर, "फिर भी तो एक उड़ती हुई ख़बर सुन आया हूँ" कहा।

"अब और क्या सुना ?"

"नई फ़ेहरिस्त में साहित्य-विभाग से तीन का नामिनेशन हुआ है। एक बड़ा कवि, एक बड़े मासिक पत्र का सम्पादक और एक प्रसिद्ध दैनिक पत्र का सम्पादक—तीनों डिपोर्ट किये जायँगे। अन्तवाले का नाम तो सर्वथा स्थिर हो गया

है, उसमें किसी का मत-भेद नहीं। किन्तु अब यह प्रश्न है कि इस देश में सबसे बड़ा कवि कौन है, और सबसे बढ़कर प्रधान मासिक पत्र कौन है ? इस विषय पर कौंसिल में मत-भेद उपस्थित है—वाद-विवाद हो रहा है।"

"इसका हमें क्या डर है। पकड़ना हो तो केदारनाथ गुप्त को पकड़ें। उनका आकार भी हमारे पत्र से बड़ा है, वे चित्र भी हमारी अपेक्षा अधिक छापते हैं, और उनकी ग्राहक-संख्या भी ख़ासी है—हमसे प्रायः डबल। केदारनाथ के 'धूमकेतु' के आगे हमारी 'आद्याशक्ति' क्या है ? हमारी 'आद्याशक्ति' को कोई पूछता भी है ?"

कालिकादीन ने गम्भीर भाव से गर्दन हिलाते हुए कहा—यह तो ठीक है, किन्तु हमीं ने तो ढोल पीटकर कहा है कि हमारे ही ग्राहक सबसे ज़ियादह हैं—प्रतिपत्ति भी सबसे अधिक है। यह कुछ-कुछ असामी की स्वीकारोक्ति हो गई, समझे न ?

यह सुनकर हमारे हृदय में धड़कन होने लगी। किन्तु मौखिक साहस दिखलाकर कहा—भई विज्ञापन की बात रहने दो। विज्ञापन में कौन क्या नहीं लिखता ? यही न देखो, तुम अपनी किताब के विज्ञापन में हर महीने छापते हो—'विषवृक्ष' से बढ़कर कोई उपन्यास प्रकाशित नहीं हुआ—तो क्या लोग भूल गये ? कोई नहीं ख़रीदता। गवर्नमेंट क्या इतनी निर्बोध है कि विज्ञापन देखकर भूल

जायगी।—मोटे-ताज़े केदारनाथ को छोड़कर दुबले-पतले हमको पकड़ेगी!

"सिर्फ़ विज्ञापन में ही नहीं, आपने उल्फ़तराय से भी तो इसी तरह की बातें कही हैं न!"

हमने मन के भाव को मन में ही दबाकर कहा—ऊँह, उल्फ़तराय बड़ा मातबर आदमी है—उसकी बात यों ही गवर्नमेंट सुन लेगी! उसकी रिपोर्ट की यदि कोई वैलू होती तो उसी दिन हमारे दफ़्तर की तलाशी न हो जाती।

कालिकादीन ने सन्देह के स्वर में कहा—ठीक जान पड़ता है।

जो कुछ काम-काज था उसे करके दस बजे कालिकादीन घर चला गया। और दिन तो उस वक्त तीन बजे आ जाता था—आज नहीं आया। उसका यह नियम देखकर हम मन ही मन चिढ़ गये।

सन्ध्या-समय कालिकादीन आकर बोला—नहीं, डर का कोई कारण नहीं। आप निश्चिन्त रहें।

हमने विस्मित होकर पूछा—क्यों, कोई नई खबर है!

कालिका ने कहा—लूकरगञ्ज में बाबू श्यामलाल रहते हैं। आप पहचानते हैं न? बड़े बाबू हैं, पाँच सौ रुपया तनख़्वाह है। यदि आपका डिपोर्टेशन ही स्थिर हुआ होगा तो और किसी को इसकी खबर मिलने के पूर्व पहले उन्हें

को मालूम होगा। इसी से सोचा—जाऊँ, किसी तरह समाचार प्राप्त करूँ।

"तो उनसे तुम्हारी जान-पहचान थी।"

"जी नहीं। यदि जान-पहचान होती तो असुविधा ही थी। हिकमत से मतलब की बात निकालने के लिए गया था न। देखा कि उन्होंने कभी आपका नाम तक नहीं सुना। वे यह भी नहीं जानते कि 'आद्याशक्ति' नाम की कोई पत्रिका भी निकलती है। हमें जिस बात का डर है, वह यदि होती तो इतने दिनों में इस सम्बन्ध की न जाने कितनी चिट्ठी-पत्रियाँ और न जाने कितने मन्तव्य उनके हाथ से आये-गये होते। आपके नाम को और आद्याशक्ति नाम को वे अच्छी तरह जान लेते। इसी से यह खेल खेला था।

हमने कौतूहल से गर्दन ऊँची कर कहा—क्या—क्या—बतलाओ तो सही।

तब कालिकादीन ने क़िस्सा छेड़ा—बाबू के पास जाकर मैंने कहा—'मुझे आपकी सेवा में पण्डित गङ्गाधर तिवारी ने भेजा है।' उन्होंने कहा—'कौन पण्डित गङ्गाधर तिवारी?'—मैं—'वही आद्याशक्तिवाले'।—वे—'मालूम होता है, कोई पेटेण्ट औषधि है? भाई पेटेण्ट दवाओं पर हमें विश्वास नहीं!'—मैं—'नहीं साहब, पेटेण्ट दवा नहीं है, 'आद्याशक्ति' मासिक पत्रिका है।'—वे—'मासिक पत्रिका?—नहीं, हमारी ही ग़लती है। उस दवा का नाम आद्याशक्ति नहीं, शक्ति-शूल है।'

अच्छा तो पण्डित गङ्गारामजी ने क्या कहा है?'—मैं—'गङ्गाराम नहीं—गङ्गाधर तिवारी। वे आद्याशक्ति के सम्पादक हैं। उन्होंने आपको यह कहला भेजा है कि—आप हैं दफ़्र के बड़े बाबू—यदि अपने दफ़्र में कृपाकर आद्याशक्ति के कुछ ग्राहक करवा दें तो बड़ा अनुग्रह हो, और कृपाकर आप स्वयं ग्राहक हो जायँ। आद्याशक्ति बहुत अच्छी पत्रिका है—हर महीने की पहली तारीख़ को नियमित रूप से प्रकाशित होती है। आजकल के जो सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-लेखक हैं उन बाबू देवीसिंह का उपन्यास 'वीणा की तान' हर महीने आद्याशक्ति में प्रकाशित होता है। क़ीमत भी कुछ अधिक नहीं—कुल चार रुपये सालाना है।'—बाबू—'यह तो सब ठीक है, किन्तु मैं तो पहले से ही एक पत्र का ग्राहक हूँ। उसका नाम अच्छा ही तो है—हाँ, धूमकेतु। सो उसी को पढ़ने के लिए समय नहीं मिलता, और नया मासिक पत्र लेकर क्या करूँगा? और दफ़्र के बाबू लोगों से भला मैं यह बात कैसे कह सकूँगा? इसकी अपेक्षा अच्छा तो यह होगा कि जब दो बजे बाबू लोग टिफ़िन-घर में पान-तम्बाकू खाने के लिए जावें तब तुम वहीं जाकर कोशिश करना—शायद कुछ सफलता हो जाय।' मैं—'बहुत अच्छा, ऐसा ही करूँगा। अच्छा अब आज्ञा दीजिए। बन्दगी'—कहकर चला आया।

यह सुनकर हृदय का भार एकदम हलका हो गया। कालिकादीन की चतुराई के लिए मन ही मन सैकड़ों धन्य-

वाद दिये। हम इतने ख़ुश हुए कि आज यदि वह अविवाहित होता तो उसे अपना जामाता बनाने का प्रस्ताव करते। वह उपाय न रहने से हमने रात को भोजन करने के लिए निमन्त्रण दे दिया—और भीतर जाकर बढ़िया मोहनभोग और पूरी-तरकारी बनवाने का प्रबन्ध कर दिया।

अब दोनों के बीच तरह-तरह की बातें होने लगीं। पश्चिम-भ्रमण के सम्बन्ध में उसकी सहायता से एक प्रोग्राम बना डाला। देखा तो उसकी भी सोलहों आने इच्छा है—हमारे साथ जाने की। हमने पूछा—तुम भी चलोगे?

"जाने की तो बेहद इच्छा है, किन्तु ख़र्च जो अधिक होगा। पैसा-कौड़ी तो कुछ हुई नहीं।"

हमने उत्साह के साथ कहा—कुछ परवा नहीं, ख़र्च हमारे ज़िम्मे रहा। तुम तैयारी करो।

दूसरे दिन पञ्जाब-मेल से जाने की बात स्थिर हो गई।

३

घर से चलते समय छोटी लड़की को छींक आ गई। हम कुरसी पर बैठकर तम्बाकू की पीक थूकने लगे। ब्राह्मणी ने कहा—अजी यह कुछ नहीं, सर्दी की छींक है।

दफ़्तर के सामने गाड़ी खड़ी है। सामान गाड़ी में रख दिया गया। हम उठकर बाहर आये। ज़ीने से उतरते समय देखा, बिल्ली रास्ता काट गई!

फिर लौटकर बैठ गये। एक गिलास पानी पिया। मुख में दो बीड़े रख लिये। फिर इष्टदेव का बार-बार स्मरण करके सावधानी के साथ बाहर निकले और गाड़ी में जा बैठे। हमारे रसोइया महाराज लक्ष्मीपति पाठक किरमिच का एक बड़ा सा झोला लेकर कोचबाक्स पर बैठ गये। ये हमारे साथ जायँगे। कालिकादीन तो सीधा स्टेशन पर पहुँचेगा।

टिकट शहर में ही ख़रीद लिया गया था। स्टेशन पर ड्योढ़े दर्जे की गाड़ी में बैठ गये। कालिकादीन ऊपर के तख़्ते पर जा लेटा और सोने की चेष्टा करने लगा। हम, नीचे ही, बेञ्च पर म्लान-मुख किये बैठे रहे।

चित्त कुछ बहुत प्रसन्न न था। एक तो घर छोड़कर कहीं जाने से ही हम लोग उदास हो जाते हैं। दूसरे घर से चलते समय दो-दो बार विघ्न हुए। हम सोचने लगे—न-जाने भाग्य में क्या लिखा है। शायद नई फ़िहरिस्त में हमारा नाम आ गया हो—वहीं विदेश से घात पाकर पकड़ ले जायँगे। श्यामलाल बाबू ने शायद कालिकादीन के साथ छल किया है—हमारे और हमारे पत्र के सम्बन्ध में उन्होंने जो अज्ञता का परिचय दिया है वह कोरा अभिनय है। अथवा चाहे बड़े साहब स्वयं अपने हाथों, गुप्त-रूप से, इन मामलों की लिखा-पढ़ी करते हों—बड़े बाबू को देखने ही न देते हों। अगर यह बात होने को न होती तो लड़की छींकती ही क्यों—और बिल्ली के रास्ता काट जाने का क्या कारण है?

सोचने से क्या हो सकता है? भाग्य के सिवा अब और कोई गति नहीं है। भाग्य में जो लिखा है वही होगा। यह सोचकर हम मन को समझाने की चेष्टा करने लगे। किन्तु दुश्चिन्ता किसी तरह पीछा छोड़ने को तैयार न हुई।

रात को इटावे में उतरे। वहाँ दो दिन ठहरे। वहाँ से मथुरा गये। मथुराजी में यमुना-स्नान किया, विश्रान्त की आरती देखी, सेठजी के मन्दिर में द्वारकाधीशजी की झाँकी की। मथुरा के पेड़े, खुर्चन और द्वारकाधीश के मन्दिर का प्रसाद पाकर एक दिन श्रीवृन्दावन भी हो आये। गिरिराज और बलदाऊ के दर्शन करने न जा सके। इटावे में एक सज्जन ने हमसे पतरिया महल की बड़ी प्रशंसा की थी। अतएव मथुरा से हमने अपने मैनेजर को लिख दिया था कि ज़रूरी चिट्ठी-पत्री 'पतरिया महल, बेलनगञ्ज' के पते पर आगरा भेजना। वहाँ चार-छः दिन ठहरने का विचार है।

मथुरा से चलकर हम सीधे आगरे पहुँचे। पतरिया महल खूब प्रसिद्ध है। वहाँ हम सहज ही पहुँच गये। इक्के-गाड़ीवाले सभी उक्त महल को जानते हैं।

महल में कई भाग हैं—एकमञ्ज़िला, दोमञ्ज़िला, तिमञ्ज़िला। वहाँ के प्रत्येक कमरे में दो-तीन यात्री मज़े में रह सकते हैं। दोमञ्ज़िले पर स्वतन्त्र कमरा भी मिल सकता है। ऊपर ही टट्टी, नल आदि का प्रबन्ध है। कहार भी हाज़िर रहता है। रसोई के लिए अलग स्थान है। हम

ऊपरवाले कमरे में ठहर गये। महल के प्रबन्धक ने और भी व्यवस्था करवा दी।

दूसरे दिन शहर की सैर की। जुम्मा मसजिद देखी। दोपहर को भोजन के उपरान्त क़िला देखने की इच्छा थी। 'पास' का प्रबन्ध एक सज्जन के ज़िम्मे था। परन्तु पीछे से ख़बर मिली कि जब से स्वदेशी-आन्दोलन ने जड़ पकड़ी है तब से बङ्गालियों को, और ऐसे लोगों को जिन पर पुलिस निगाह रखती है, पास नहीं दिया जाता। एक गाइड महोदय ने आश्वासन दिया कि दरख़्वास्त तो लिख दीजिए—हम एक बार कोशिश करेंगे।

कोशिश होते-होते चार बज गये—पास अब न तब। सारा दिन यों ही गया।

दूसरे दिन भोजन करने के प्रथम ही ताज और एतमाद्दुदौला तथा उस वक़्त सिकन्दरा देखने की सलाह ठहरी। इसके बाद एकका करके फ़तहपुर-सीकरी जाने का विचार हुआ।

पूर्व परामर्श के अनुसार सबेरे सात बजे किराये की गाड़ी में बैठकर हम ताज देखने गये।

फाटक के भीतर प्रवेश करके देखा, बाग़ में ज़रा अन्तर पर एक बाबू घूम रहा है। हम लोगों को देखते ही वह ठहर गया और हमारी ओर टकटकी लगाकर देखने लगा।

हम लोग धीरे-धीरे ताज-महल की ओर अग्रसर हुए। वह आदमी भी, जहाँ था वहीं से, बाग़ ही बाग़ होकर ताज

के समीप पहुँचा और हमारी ओर मुँह करके खड़ा हो गया। देखा कि उम्र इसकी पैंतीस वर्ष के लगभग है, क़द लम्बा है, हाथ-पैरों की हड्डियाँ सुपुष्ट हैं और सीना चौड़ा है। सुनहरे फ्रेम का चशमा आँखों की शोभा बढ़ा रहा है। ख़ूब भरी हुई लम्बी-लम्बी मूछें और फ्रेंचकट डाढ़ी है। उसे देखते ही न-जाने कैसे यह धारणा हो गई कि यह पुलिसवाला है।

किन्तु वह हमसे बोला कुछ नहीं। सिर्फ़ ध्यान से हमें एँड़ी से लेकर चोटी तक देखने लगा—कालिकादीन को एक निगाह से देखा तक नहीं।

हम लोग जूते उतारकर ऊपर चढ़ गये। द्रष्टव्य स्थानों को घूम-घूमकर देखने लगे। वह आदमी भी प्रायः हमारे साथ ही साथ रहा।

ऊपर नक़ली, नीचे असली मज़ार (समाधि) देखकर हम इधर-उधर घूमने लगे। पिछले एक मीनार के ज़ीने के पास पहुँचे तो वह बाबू न था। यह अवसर पाते ही हमने कालिका का हाथ पकड़ करके कहा—आओ, ऊपर चलें।

बड़े परिश्रम से सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँचे। वहाँ का विशुद्ध मृदु वायु बड़ा मधुर लगने लगा। वहीं बैठकर हम चारों ओर दृष्टिपात करने लगे। उस बाबू के कहीं दर्शन न हुए।

वायु-सेवन से जब कुछ चित्त शान्त हुआ तब कालिका से कहा—बतलाओ, वह कौन था, मेरी ओर एकटक देख रहा था।

कालिकादीन ने गम्भीर भाव से कहा—पुलिसवाला।

"कैसे मालूम हुआ ?"

"उसके माथे में, बालों से ठीक आध इञ्च नीचे, लाल-लाल निशान नहीं देखा ?"

"नहीं, हमने ध्यान नहीं दिया।"

"मैंने तो देखा है। पुलिस-कैप का दाग़ है। इन लोगों की सरकारी टोपियाँ ख़ूब टाइट होती हैं न।"

यह सुनकर हम सुन्न हो गये। थोड़ी देर में कहा—तो क्या हमें गिरफ़्तार करने आया है ?

"हो सकता है—और नहीं भी। पुलिस के आदमी क्या कभी छुट्टी लेकर यहाँ की सैर करने नहीं आ सकते ?—क्या उनके लिए ताजमहल देखने की मनाही है ?"

हमने अपने मन को धीरज बँधाने के बहाने पूछा—तो सैर करने के लिए आया हुआ ही जान पड़ता है न ?

वह गम्भीर भाव से बोला—अचरज की बात नहीं।

इसके साथ ही देखा—वह आदमी फिर बाग़ में गया है। कालिकादीन का हाथ दबाकर हमने उँगली के इशारे से उसे दिखा दिया।

वह एक स्थान पर स्थिर होकर ताजमहल को टकटकी लगाकर देखने लगा। फिर ऊपर और उसके भी ऊपर नज़र फेरकर एक-एक मीनार के गुम्बज़ का निरीक्षण करने

लगा। इसके बाद जेब से बाइनोक्यूलर दूरबीन निकालकर हम लोगों पर उसने लक्ष्य स्थापन किया।

उसके इस कार्य से हमारे रोंगटे खड़े हो गये। कालिकादीन बोला—लक्षण अच्छे नहीं हैं।

लक्षण अच्छे न होंगे—जब लड़की को छींक आई थी तभी हम जान गये थे!

अब हमें मानो रोआस आने लगी। "क्या किया जाय?" कहकर हमने कालिकादीन का हाथ पकड़ा।

"आइए, यहाँ बैठे रहें। जब वह चला जायगा तब हम लोग नीचे चलेंगे।"

वह देर तक नहीं ठहरा। दस-पन्द्रह मिनट में इधर-उधर चक्कर काटकर फाटक से बाहर हो गया।

हम आध घण्टे तक अपेक्षा करके नीचे उतरे। फाटक के बाहर गाड़ी के पास आकर देखा तो गाड़ीवान कोचबक्स पर पड़ा सो रहा है। उसे जगाकर 'एतमादुद्दौला' चलने का हुक्म दे हम लोग गाड़ी में बैठने लगे। इसी समय देखा कि पासवाली तसवीरों की दूकान से, कई एक तसवीरें हाथ में लिये, वह आदमी बाहर निकला। गाड़ी दौड़ने लगी। हम मन ही मन आशा करने लगे—मालूम होता है, उसने हमें देखा नहीं।

कालिकादीन को दुचित्ता देखकर पूछा—क्या सोच रहे हो?

"माथे पर निशान होने से ही कोई पुलिसवाला नहीं हो जाता। जो लोग इँगलिश फ़ैशन का कोट-पतलून पहनते और सिर पर कड़ा हैट धारण करते हैं उनके सिर में भी इस तरह का निशान पड़ जाता है। यही बात सोच रहा हूँ।"

"तो फिर दूरबीन से हम लोगों को क्यों देखा ?"

"क्या जाने, हम लोगों को देखता था या ताजमहल की शोभा को ?"

"हो सकता है।" कहकर हम भी गम्भीर होकर बैठ गये।

एक घण्टे के बाद एतमादुद्दौला पहुँचे। वहाँ की सैर कर रहे थे कि पीछे से जूते की आहट मिली। मुड़कर देखा तो वही मूर्त्ति। दिल धड़कने लगा। इस बार ध्यान से देखा—कालिकादीन ने जैसा कहा था वैसा ही—सिर में ऊपर को साफ़ लाल गोल निशान है। कालिका की पर्यवेक्षण-शक्ति पर हम मुग्ध हो गये।

धीरे-धीरे हटकर उस आदमी के पास से दूर हो गये। एतमादुद्दौला का गठन-सौन्दर्य, कुशलता, जाली का काम, कुछ भी अच्छा न लगा। कालिका से कहा—चलो, डेरे पर चलें।

'चलिए' कहकर वह हमारे पीछे हो गया। जब फाटक से बाहर आ रहे थे तब मुड़कर देखा—वह आदमी एतमा-दुद्दौला के बराण्डे में खड़ा-खड़ा हम लोगों की ओर उत्कण्ठित

दृष्टि से देख रहा है। हाथ दबाकर हमने कालिका से कहा—क्यों, अब किसकी शोभा देख रहा है?

कालिका—लक्षण अच्छे नहीं हैं।

महल में लौटकर नहाया-धोया और भोजन-भजन किया। भोजन करने सिर्फ़ बैठे ही—कुछ खाया ही न गया।

४

भोजन से निवृत्त होकर कालिकादीन से कहा—तो फिर सिकन्दरे को चलना होगा? वह तो बिलकुल पीछे पड़ा है। जो वहाँ भी पहुँचे तो?

कालिकादीन—क्या मालूम, हमारा पीछा कर रहा है या दोनों ही जगह घटना-क्रम से हम लोग एकत्र होगये थे। जो आगरे की सैर करने आता है, आख़िर वह सभी स्थानों को देखता है।

"जो हम लोग सिकन्दरे में जाकर देखें कि वह हमारा साथ दे रहा है तो?"

"तब तो कुछ चिन्ता का कारण हो सकता है। सिकन्दरा यहाँ से छः मील पर है। अगर वहाँ पर वह ठीक हमारे साथ ही पहुँच जाय तब तो घटना-क्रम की थ्योरी कुछ दुर्बल हो जायगी।"

"बिलकुल दुर्बल हो जायगी।"

जो हो, ढाई बजे सिकन्दरे के लिए कूच किया। वहाँ पहुँचने पर उस आदमी के कहीं दर्शन न हुए। किसी तरह जान में जान आई।

रात को महल में आकर देखा, शरीर बिलकुल ही शिथिल हो गया है। मन से दुश्चिन्ता का कुछ बोझा घट जाने के कारण भूख भी करारी लगी। रसोइया महाराज से कहा—जो अब रसोई करना शुरू करोगे तो रात के दस बजेंगे। एक काम करो। बाज़ार से पूरी, कचौरी, दालमोठ, तरकारी, अचार और रबड़ी ले आओ। खा-पीकर ज़रा जल्दी आराम करें। यहाँ कौन देखता है कि तिवारीजी बाज़ार की पूरियाँ उड़ा रहे हैं।

खा-पीकर आठ से पहले ही बिछौने पर पहुँच गये। कमरे में एक लालटेन जल रही थी।

कालिका की नासिका तो दस मिनट के भीतर ही गर्जने लगी। हम सोचने लगे—सुखी वही हैं जो विख्यात नहीं हैं, जिनको डिपोर्टेशन का डर नहीं है।

अब हम इधर-उधर करवट बदलने लगे। किसी तरह निद्रा से भेंट न हुई। रात के साढ़े आठ बजे होंगे—तब आहट मिली। दो आदमी धीरे-धीरे बाहर के बराण्डे में फुस-फुस बातचीत कर रहे हैं। "पण्डित गङ्गाधर" नाम की भनक कान में पड़ते ही हमने कान खड़े किये।

बातचीत पहले की तरह होने लगी। किन्तु साफ़-साफ़ कुछ भी न सुन पड़ा। आहट बचाकर हम उठ बैठे और दरवाज़े के पास जा किवाड़ों की दर्ज से बाहर की ओर देखने लगे। बराण्डे में उजेला था। वहाँ खड़े-खड़े ही बातचीत हो रही है—महल के मुनीम के साथ 'उसकी'।

डर से हमारी अन्तरात्मा सूख गई—हाथ-पैर थर-थर काँपने लगे।

महलवाले ने बातें करते-करते हमारे बन्द दरवाज़े की ओर दो-तीन बार उँगली से इशारा किया।

हाय कालिकादीन!—तुम्हारी वह घटना-क्रम की थ्योरी इस समय कहाँ गई? महल के मुनीम ने कहा—तो पण्डितजी को जगा दूँ!

"नहीं, मैं कल सवेरे फिर आऊँगा। इस समय मुझे एक और काम है।"

"सरकार कहाँ ठहरे हैं?"

"पुलिस-दफ़्तर के हेडक्लर्क बाबू गङ्गाप्रसाद को जानते हो?"

"नाम सुना है।"

"मैं उन्हीं के यहाँ उतरा हूँ। देखो, पण्डितजी से हमारी कोई बात न कहना। ख़बरदार! समझ गये न?"

"नहीं हुजूर, जब आप मना कर रहे हैं तब मैं क्यों कहूँगा? बन्दगी।"

वह चला गया।

हमारे नेत्रों से आँसू बरसने लगे। काँपते-काँपते हमने कालिका को जगाया। उसको सब बातें सुना दीं।

सुनकर वह चुपचाप बैठा रह गया।

टूटे हुए स्वर से हमने कहा—अरे कालिकादीन, चुप क्यों हो रहे? बोलो, अब क्या उपाय है?

उसने संक्षेप में कहा—पलायन।

हमने व्याकुलता के साथ कहा—वह हमें पकड़ने आया है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। क्या कहते हो कालिकादीन—अयँ ?

कालिका—जब वह पुलिस-दफ़्तर के बड़े बाबू के ही यहाँ ठहरा है, उसी का मेहमान है तब वह निःसन्देह प्रयाग का जासूस है। वह महल के मुनीम से जो कह गया है कि हमारी कोई बात ज़ाहिर न करना, इसी से भली भाँति उसका असत् अभिप्राय व्यक्त होता है। वह सोचता होगा कि ख़बर पाते ही ये भाग जायँगे। सबेरे पहर आकर वह मकान को घेर लेगा। इसी समय निकल चलिए।

"भागकर जायँ कहाँ ?"

"कहीं भी। यहाँ रहे तो सबेरे ही आकर चट से गिरफ़्तार कर लेगा। हवागाड़ी में बिठलाकर दम भर में ले जायगा। दो घड़ी रात रहते ही कांस्टेबिलों से घर को घेरवा लेगा।"

"भागने को कहते हो—भाग-भागकर कब तक मारे-मारे फिरेंगे कालिकादीन ?" यह कहते-कहते फिर हमारी आँखों से टप्-टप् आँसू गिरने लगे।

"आपने ख़ून तो किया ही नहीं है कि जभी पकड़े गये तभी फाँसी चढ़ा दिये जायँ! अभी बरस दो बरस यदि आप छिपकर निर्वाह कर सकें तो—इसके पश्चात् स्वदेशी का यह गोलमाल रुक जाने पर—फिर आपको पकड़ना न चाहेंगे।"

बैठे-बैठे हम अपार समुद्र की चिन्ता करने और धोती के खूँट से बार-बार आँसू पोंछने लगे। इस उम्र में कहाँ मारे-मारे छिपते फिरेंगे।—क्या निकल ही जायँ? कालिका से यही बात कही।

वह सान्त्वना के कोमल स्वर में बोला—आप नकली नाम से हमको चिट्ठी लिखा कीजिए। हम 'आद्याशक्ति' के खाते में से आपको चाहे जब और चाहे जहाँ रुपये भेज दिया करेंगे। किन्तु आपको एक हिकमत करनी होगी।

"क्या?"

कुछ सोचकर कालिका धीरे-धीरे बोला—आप आज ही भाग जायँ—मैं कल इलाहाबाद लौट जाऊँगा। वहाँ जाकर प्रसिद्ध कर दूँगा कि आप दिल्ली गये हैं, दो-चार दिन में लौटेंगे। कोई एक सप्ताह के बाद आप, जहाँ हों वहाँ से, किसी काल्पनिक नाम से एक तार भेज दें—"अकस्मात् हैजे से तिवारीजी की मृत्यु हो गई।"

यह बात सुनते ही हमारे रोंगटे खड़े हो गये। हमने पूछा—इसका फल क्या होगा?

कालिका ने गम्भीर भाव से कहा—दो प्रकार का फल होने की आशा है। एक, आपके मरण का समाचार पाने से गवर्नमेंट आपके नाम वारण्ट जारी न करेगी—फिर पकड़े जाने का डर भी न रहेगा। दूसरे, आपकी मृत्यु के उपलक्ष में सभा इत्यादि करके, लेख और शोक-गीति लिखकर

तथा जीवन-चरित छापकर मैं यह बात प्रसिद्ध कर दूँगा कि आप अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए एक कौड़ी भी नहीं छोड़ गये हैं—आपकी अनाथ विधवा और असहाय बेटे-बेटियों की रक्षा के लिए और कोई उपाय नहीं है, 'आद्याशक्ति' की आय पर ही उनका भरोसा है। 'आद्याशक्ति' की ग्राहक-संख्या कम से कम दूनी न हुई तो उन्हें अन्न बिना प्राण देना होगा। इस प्रकार छल करके कुछ ग्राहक बढ़ा लेंगे।

कालिकादीन की बुद्धि देखकर हम दङ्ग हो गये—कुछ भरोसा भी हुआ। हमने कहा—आइने की दराज़ में हमारा फ़ोटोग्राफ़ है। उसे भीतर से मँगवा लेना और जीवनचरित के साथ हमारी तसवीर भी छाप देना। किन्तु मरने की बात ज़ाहिर कर देने कहते हो,—घरवाले रो-रोकर अस्थिर न हो जायँगे।

"उनसे एकान्त में सच बात कह दूँगा। किन्तु दुनिया को दिखाने के लिए थोड़ा-बहुत रोने-पीटने का अभिनय तो करना ही होगा।"

"अच्छा, यह हुआ। किन्तु जब हम बरस-दो बरस पीछे वहाँ साक्षात् पहुँचेंगे तब लोगों को क्या उत्तर देंगे?

कालिकादीन—तब यह प्रकट किया जायगा कि कई दुर्वृत्तों ने साज़िश करके आपको एकाएक पकड़कर तिब्बत या चीन—ऐसी ही एक जगह—पहुँचा दिया था। अब वहाँ से छुटकारा मिलने पर स्वदेश को लौटे हैं। अमुक संख्या से,

आपका इन दो वर्षों का आत्म-चरित लगातार प्रकाशित होगा। उस कहानी के पढ़ने से पाठक युगपत् हर्ष, क्रोध और विस्मय में मग्न हो जायँगे—वह सैकड़ों उपन्यासों का घनीभूत सार है—इत्यादि कहकर और भी ख़ूब ग्राहक बढ़ा लेने का उद्योग किया जायगा।

"इसके पश्चात् ?"

"उस ढँग के एक उपन्यास की रचना मैं इसी बीच कर रक्खूँगा।"

हमने सोचा, भाग्य से कालिका को साथ लेते आये थे। जो यह साथ न होता तो ये बातें कौन सिखलाता ! हमारी बुद्धि तो लुप्त हो गई है। फिर पूछा—अच्छा, यह भी हुआ, अब भागने की हिकमत बताओ।

"बतलाता हूँ" कहकर उसने टाइम-टेबिल निकाला। लालटेन तेज़ कर दी। कुछ मिनटों तक झुका-झुका टाइम-टेबिल के पन्ने उलट-पलटकर बोला—अच्छा, कैन्टूनमेण्ट से पौने दस बजे एक पैसेञ्जर गाड़ी छूटेगी। राजामण्डी स्टेशन पर वह दस बजकर तीन मिनट पर पहुँचेगी और दस मिनट पर वहाँ से खुलेगी। राजामण्डी स्टेशन पर आप उसी गाड़ी में सवार हो जायँ। बस, पश्चिम जाने के लिए आप लम्बे हो जाइए।

"इसके बाद कल सबेरे आकर पुलिस तुमसे न पूछेगी ? तब तुम क्या कहोगे ?"

"कहूँगा—'आप प्रयागराज को लौट गये हैं।' आपकी गिरफ़ारी के लिए बड़े-बड़े स्टेशनों को पुलिस तार देगी! मरें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते।"

घड़ी निकालकर देखा तो साढ़े नौ का समय था। हमने कहा—अब देरी हुई तो काम न बनेगा। तो अब चलना चाहिए।

हमने एक छोटे से बैग में अत्यावश्यक दो-चार चीज़ें रख लीं—रुपया-पैसा अण्टी में रख लिया। फिर कहा—कपड़े पहनो। हमें गाड़ी में बिठा आओ।

"मुझे भी चलना होगा?"

हमने कातर हो विनती के स्वर में कहा—कालिका, तुम साथ न रहो तो हमारे हाथों-पैरों में ताक़त ही न रहे।

कालिकादीन कपड़े पहनने लगा। दोनों हाथों से उसका दाहिना हाथ पकड़कर हमने कहा—"कालिका, तुम हमारे लड़के तो नहीं हो, किन्तु लड़के की ही तरह हो। तुम्हारे भरोसे हमारी सारी गृहस्थी, बाल-बच्चे और व्यवसाय है। देखो, हमारी स्त्री और बेटे-बेटियों को कोई कष्ट न हो!" आँसुओं की बाढ़ में आँखें डूब गईं।

कालिकादीन की आँखें भी डबडबा आईं। उसने कहा—"मुझको ये बातें सिखानी न होंगी। लाइए, आपके पैर तो छू लूँ।" उसने हमारे युगल चरणों की वन्दना की। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे।

भली भाँति आँखें पोंछकर और यथासाध्य सावधान होकर हम हाथ में बैग लेकर खड़े हो गये। हमने कहा—अरे भाई, हमको इस असमय में जाते देखकर महल के मुनीम को सन्देह न होगा? हमको भागते जानकर यदि वह उसे ख़बर दे आवे?

"हम ऐसा उपाय करते हैं जिसमें उसको सन्देह न हो। लाइए, बैग मुझे दीजिए।" कालिकादीन दरवाज़ा खोलकर बाहर आया। मुनीम को बुलाकर बोला—मुनीम साहब, भूख लगी है। सोचता हूँ, बाज़ार से फल-फलहरी और दालमोठ इस बैग में भर लाऊँ। मेवा-फ़रोश की दूकानें खुली होंगी न?

"हाँ साहब, खुली होंगी। सब चीज़ें मिल जायँगी।"

"अच्छा, हम दोनों आदमी जाकर लिये आते हैं। तुम्हारा फाटक कब तक खुला रहता है?"

"ग्यारह बजेवाली गाड़ी के मुसाफ़िरों की प्रतीक्षा करके फाटक बन्द किया जाता है।"

"तो हम उससे पहले ही लौट आवेंगे। देखो, हमारे लौटने से पहले ही फाटक न बन्द कर देना। परदेश है, हमें नाहक़ इधर-उधर बर्बाद न होना पड़े।"

"नहीं साहब, आप बेफ़िक्र रहें। ग्यारह से पहले फाटक बन्द न होगा।"

हम बाहर निकलकर मोड़ पर पहुँचे। एक्का करके राजामण्डी स्टेशन पर उपस्थित हुए। टिकट लेकर प्लेटफ़ार्म

पर पहुँचे ही थे कि धक्-धक् करती हुई गाड़ी आ गई। कालिका ने कहा—कोई डर की बात नहीं, गाड़ी सात मिनट ठहरेगी।

ड्योढ़े दर्जे की गाड़ी ज़रा अन्तर पर थी। उसी ओर आगे-आगे हम चले और पीछे-पीछे कालिकादीन। पास पहुँचकर देखा, लालटेन के नीचे **वही भीषण मूर्ति** खड़ी है!

वह हमारी ओर एकटक देखकर, एक निमेष में ही पास आकर बोला—क्षमा कीजिएगा, श्रीपण्डित गङ्गाधरजी तिवारी श्रीमान् ही हैं?

अस्वीकार किस प्रकार कर सकते थे? आज प्रातःकाल से लेकर दोपहर पर्यन्त इसने हमें बड़ी बारीकी से पहचान लिया है। सोचा—हम कहीं भाग न जायँ, इसलिए ट्रेन के समय प्लेटफ़ार्म पर पहरा दे रहा है।

पीछे मुड़कर देखा—कालिका गायब है। हाय! इसी नराधम को हमने अपनी स्त्री और बेटे-बेटियों का भार सौंपा था!

हमें निरुत्तर देखकर उसने फिर पूछा—'आद्याशक्ति' के सम्पादक पण्डित गङ्गाधरजी तिवारी आप ही हैं?

हमने उसके मुँह की ओर शून्यदृष्टि से देखकर कहा—"जी हाँ!" हमें चक्कर सा आने लगा, देह बेक़ाबू हो गई।

इसके बाद उसने क्या कहा, कुछ समझ में नहीं आया। चारों ओर अन्धकार सा देखकर हम बेसुध हो गये।

होश होने पर देखा—हम वेटिंग रूम की टेबिल पर लेटे हुए हैं, देह पानी से तर है। एक ओर कालिका और दूसरी ओर वही आदमी, दोनों खड़े पङ्खा झल रहे हैं। समीप ही ओषधियों का बकस खोले कई डाक्टर बैठे हैं।

हमारे आँख खोलते ही कालिकादीन ने कहा—पण्डितजी, अब कैसी तबीअत है? मैंने तो उसी समय कहा था, 'आपका शरीर दुर्बल है, आज रात की गाड़ी में जाना ठीक नहीं।' भाग्य से हमारे बाबू काशीप्रसाद मौजूद थे—इन्हें आप पहचानते हैं न?—हमारी 'आद्याशक्ति' के लेखक बाबू काशीप्रसाद। आप बेसुध होकर गिर ही रहे थे कि इन्होंने सँभाल लिया। यदि ये न सँभालते तो भारी चोट लगती।

हमारा माथा उस समय भी ठण्डा न हुआ था। क्षीण स्वर से पूछा—बाबू काशीप्रसाद?—कहाँ हैं?

जिसे हम दिन भर जासूस समझकर भड़क रहे थे उसी को 'यही तो हैं' कहकर कालिका ने दिखला दिया।

अब समझ में आया कि भारी भूल हुई थी—भय का तो कोई कारण ही नहीं है। आराम से आँखें मूँद लीं।

कोई दो घण्टे में जी ठिकाने हुआ। जागकर तब समस्त बातें सुनीं। बाबू काशीप्रसाद हमारी 'आद्याशक्ति',

के एक प्रधान लेखक हैं। बलिया में वकालत करते हैं—किन्तु प्रत्यक्ष मिलने-जुलने का कभी अवसर नहीं मिला। छुट्टियों में ये भी सैर करने निकले हैं। प्रयाग में हमारे दफ़्तर में मैनेजर से इनको मालूम हुआ था कि—हम अमुक तारीख़ से अमुक तारीख़ तक आगरे में 'पतरिया महल' में ठहरेंगे। ताज और ऐतमादुद्दौला में हमें देखकर उन्हें विश्वास हो गया था कि 'आद्याशक्ति' के सम्पादक हमीं हैं। क्योंकि हमारा दिया हुआ एक फ़ोटो उनके घर में है। फिर भी वे सङ्कोच-वश वहाँ हमसे पूछ न सके। फिर पतरिया महल में जाकर रजिस्टर में हमारा नाम और पता देखने से उन्हें निश्चय हो गया। हमें निद्रित समझकर वे जगाने का निषेध कर आये थे। सोचा था कि दूसरे दिन महल में पहुँचकर हमें अचम्भे में डाल देंगे, इसी लिए इस सम्बन्ध की बातें गुप्त रखने के लिए महल के मुनीम को ताकीद कर गये थे। पुलिस-दफ़्तर के बड़े बाबू गङ्गाप्रसाद इनके मामा हैं—उन्हीं के घर ठहरे हैं। गोकुलपुरा में प्रोफ़ेसर जड़ी-बूटिया के यहाँ दावत थी। भोजन करके इस ट्रेन से लौट रहे थे। इनके मामा का मकान बिल्लोचपुरा स्टेशन से बिलकुल समीप है।

अन्त में फिर एक बार कालिका की बुद्धि की प्रशंसा की। उसने हमें साफ़ बचा दिया। हमारी मूर्च्छा के कारण को बाबू काशीप्रसाद ज़रा भी नहीं जान सके।

हमने बाबू काशीप्रसाद के साथ आनन्दपूर्वक कई दिन आगरे में बिताये। उनके मामा साहब की सिफ़ारिश से क़िला देखने के लिए 'पास' भी मिल गया। आगरे से दिल्ली और गढ़मुक्तेश्वर की सैर करते हुए हम प्रयाग धाम में आ पहुँचे।

वायु-परिवर्तन

१

"हरप्रसाद---ओ हरप्रसाद---अरे भैया बुखार उतरा कि नहीं ?"

लिहाफ़ के भीतर से ही काँपते-काँपते हरप्रसाद बोला--अरे रे !--उतरा !--अब एक-दम ही उतरेगा ।

माँ ने कहा---धत्तेरे की, कोई ऐसी बात कहता है । भगवान् जल्दी आराम कर देंगे ।

हरप्रसाद की कँपकँपी और भी बढ़ गई ।

"जाड़ा बहुत लगता है बेटा ?"

"उँहूँ हूँ, उँहूँ हूँ ।"

"क्या सिर में दर्द होता है ?"

"फटा जाता है, बिलकुल चैन नहीं ।"

"मैं तो अभी बिछौने को छूती नहीं । बहू को भेजती हूँ, ज़रा सिर पर हाथ फेरती रहेगी तो आराम मिलेगा ।"

"जैसा समझो, करो । उँहूँ हूँ ।"

अचम्भे की बात है कि माँ के जाते ही हरप्रसाद की कँपकँपी बन्द हो गई । उसके कराहने की आवाज़ भी फिर न सुन पड़ी । पहले मुँह, इसके बाद अस्थिचर्मावशिष्ट हाथ

का अग्रभाग लिहाफ़ से बाहर निकल आया। खुले जंगले की राह से घर में दुपहरी की धूप आ गई थी जो शय्या के एक स्थान को उज्ज्वल कर रही थी। भौंहें सिकोड़कर हरप्रसाद उसी ओर कुछ नाराज़ी के साथ देखने लगा।

वह इस विधवा का इकलौता बेटा है। बाईस-तेईस बरस का होगा, किन्तु दाढ़ी-मूँछ अभी तक अच्छी तरह नहीं जमी। दो-तीन बरस से हरप्रसाद पर मलेरिया बुख़ार की मेहरबानी है। जब अच्छा रहता है, ख़ूब खाता-पीता और घूमता-फिरता है। उस समय यह उन्नीस-बीस बरस से ऊपर का नहीं जँचता। शरीर कोयले की तरह काला है, आँखें धँस गई हैं, पेट मटका ऐसा बढ़ गया है और पैर बिलकुल ही पतले-पतले हैं।

गाँव का नाम बलरामपुर है। पहले हरप्रसाद की हालत, देहात के लिहाज़ से अच्छी थी। उसके पिता मुंशी वंशीधर ने अपनी होशियारी से कारबार बढ़ा लिया था। बहुत सी ज़मीन ले ली थी और कच्चे मकान को गिराकर अच्छा पक्का मकान बना लिया था।

एक कुटुम्बी लाला भैरवप्रसाद के समधी (जेठी लड़की के ससुर) किसी ताल्लुक़दार के यहाँ नौकर थे। महारानी की जुबली के उपलक्ष में राजा साहब के साथ वे, छिपकर, विलायत हो आये थे। गाँव में यह बात फैलते ही वंशीधर ने भैरवप्रसाद का हुक़्क़ा-पानी बन्द करा दिया। उन्हें जाति

से ख़ारिज़ करके गाँव के एक दल के आप मुखिया बन बैठे। भैरवप्रसाद को जाति से अलग करके ही आप शान्त नहीं हुए, बल्कि उन पर कुछ मामले मुक़दमे भी खड़े कर दिये। कई वर्ष तक वंशीधर अपने दबदबे से गाँव में समाज का शासन और मुक़दमों का परिचालन करते रहे, किन्तु इसके बाद लाचार हो गये। लाला भैरवप्रसाद का बेटा भूपतिलाल ज्योंही डिपुटी कलेक्टर हुआ त्योंही गाँववालों ने वंशीधर की तरफ़ से गवाही देना अस्वीकार कर दिया। फिर एक-एक करके जाति के लोग मुंशी वंशीधर के दल को छोड़कर लाला भैरवप्रसाद के दल में जा मिले। इतने पर भी वंशीधर ने अपनी ज़िद न छोड़ी। और कई वर्ष तक मुक़दमे चलाकर एक प्रकार से सर्वस्व खो करके अन्त में चल बसे। इसी से हरप्रसाद आज दरिद्र है—जो थोड़ी-बहुत पैतृक-सम्पत्ति रह गई थी उसी से किसी तरह गुज़र करता है। घर में इनी-गिनी मूर्तियाँ हैं, नहीं तो और भी आफ़त होती। माँ, दुलहिन, बुआ और एक फुफेरे भाई के सिवा घर में और कोई नहीं। अभी तक हरप्रसाद के कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ।

बाहर बरामदे में स्त्री के पैरों की आहट पाते ही हर-प्रसाद ने फिर लिहाफ़ से मुँह ढँक लिया। स्त्री का नाम गजरादेवी है, उम्र अठारह साल की होगी। रङ्ग तो उतना अच्छा नहीं पर चेहरा अच्छा है। गजरा बिछौने के समीप

आकर बैठ गई। फिर धीरे-धीरे स्वामी के मुँह पर से लिहाफ़ हटाकर उसने सिर पर हाथ रक्खा और कहा—क्यों जी, अब तो बदन वैसा गरम नहीं है।

हरप्रसाद ने मुँह बनाकर कहा—"नहीं तो, बदन गरम कैसे रहेगा! बिलकुल बर्फ़ हो गया है।" अब वह फिर उँहूँ-हूँ करके कराहने लगा। "अरे बप्पारे, अरी मैयारी" कह-कर जल्दी-जल्दी करवट बदलने लगा।

"लाओ, ज़रा सिर को दबा दूँ" कहकर गजरा ने हरप्रसाद के माथे को ज्योंही हाथ लगाया त्योंही उसने फुर्ती से उसके हाथ को झटककर कहा—बस रहने दे, अब और इतनी दया का काम नहीं। जिसकी देह बर्फ़ की तरह ठण्डी है उसके सिर में कहीं दर्द भी होता है?

गजरा समझ गई कि मैंने इनकी देह को ख़ूब गरम नहीं बतलाया, इससे ये नाराज़ हो गये हैं। अब वह कई मिनट तक चुपचाप बैठी रही। इसके बाद फिर हरप्रसाद के सिर पर हाथ फेरकर उसने कहा—अरे! सच तो है। देह से आग की सी लौ निकल रही है! देर तक चूल्हे के पास बैठी रही और वहीं से उठकर यहाँ चली आई हूँ, इससे मेरे ही हाथ गरम थे। तभी तो मैं ठीक-ठीक नहीं समझ सकी।

हरप्रसाद तमक उठा और स्त्री के हाथ को दूर हटाकर बोला—"अरे चल, जा—अब माँग में सिंदूर न भरना

पड़ेगा। चली जा यहाँ से—सीधी तरह से न उठेगी तो फिर तू जान" यह कहकर वह करवट बदलकर सो गया।

थोड़ी देर में सिर घुमाकर देखा—गजरा बैठी-बैठी रो रही है। तब उसने कहा—किसलिए बैठी हो?

आँखें पोंछकर गजरा बोली—तुम नाराज़ क्यों हो गये? मैंने ऐसा क्या बिगाड़ा है?

हरप्रसाद ने मुँह बनाकर कहा—नाराज़ क्यों हो गये, मैंने क्या किया है!—बाक़ी ही क्या रख छोड़ा है?

गजरा टकटकी लगाकर स्वामी के मुँह की ओर देखती रही। हरप्रसाद बिछौने में मुँह छिपा करके बोला—जिसका घरवाला बुख़ार के मारे बेचैन पड़ा है,—वह जायगी न्योता खाने, मौज करने?

गजरा ने धीरे-धीरे कहा—चाची ख़ुद आई थीं और बुला गई थीं। जब हम घर के लोग न जायँगे तब क्या अच्छा मालूम होगा?

"घर के लोग—आत्मीय! बप्पा जिसे जाति से अलग कर गये उसी के घर गई थी न्योता खाने! क्यों? क्या घर में खाने को नहीं जुड़ता? पेट की इतनी चिन्ता?"

गजरा रो-रोकर कहने लगी—क्या कहना है, ख़ूब अच्छी बातें सीखी हैं! लोग भूखों ही मरते होंगे जो जाति-बिरादरी में न्योता खाने जाते-आते हैं। और बप्पा उन्हें जाति से

बाहर कर गये थे सही, पर अब तो वे अलग नहीं—अब तो सभी उनमें जा मिले हैं—और हम कुटुम्ब की होकर—

हरप्रसाद ने उत्तेजित स्वर में कहा—"जाति का शत्रु परम शत्रु है—यह नहीं जानतीं ? हम लोगों की वह क्या परवा करता है ? ऐसे जाति-भाई के मुँह पर हम पाँच जूते लगाते हैं। और जो लालच से पीछा न छुड़ा सके, जो उसके घर न्योता खाने जाय, उस पर लानत है।" आँखों को आँचल से पोंछती हुई गजरा वहाँ से उठकर चली गई।

२

रात को बुख़ार उतर गया। सबेरे हरप्रसाद ने नीम की दतौन करके कविराज सिद्धिनाथ वर्मा की 'सिद्धि-सुधा' का सेवन इसलिए किया कि दो-चार दिन बुख़ार से बचा रहे। इसके आध घण्टे बाद बरामदे में चटाई बिछाकर बैठ गया। तीन-चार हिन्दू-बिसकुट खाकर उसने पानी पिया। इसी समय आँगन के उस छोर से सुनाई पड़ा—"कहाँ गईं ताईजी !" देखा तो स्वयं भूपतिलाल खड़े हैं। झटपट पाकेट में बिसकुट छिपाकर हरप्रसाद ने धोती के छोर से मुँह पोंछ डाला और गम्भीरता धारण करके बैठ गया।

लड़के का अन्न-प्राशन था। इसके लिए भूपतिलाल तीन ह़फ्ते की छुट्टी लेकर घर आये हैं। किन्तु आज से पहले उन्होंने कभी इस घर में पैर नहीं रक्खा। इसका एक कारण था। तीन बरस पहले जब वे पिता की बरसी करने आये

थे तब गाँव के सभी लोग उनके यहाँ भोजन करने गये थे; नहीं गया था सिर्फ़ हरप्रसाद। न तो खुद ही गया और न माँ तथा बुआ को जाने दिया।—फिर भी भूपतिलाल की माता इस दफ़े सबको न्योता दे गई थीं। हरप्रसाद से छिपाकर सास-पतोहू कल उनके यहाँ न्योते में चली गई थीं—सिर्फ़ यही नहीं, वे यह भी कह आईं—"बुख़ार आ जाने से हरप्रसाद नहीं आ सका, पछताकर रह गया।" यह बात उन्होंने अपनी तरफ़ से कह दी थी। इसका परिणाम अच्छा ही हुआ। भूपतिलाल ने पुकारा—"कहाँ गईं ताईजी—हरप्रसाद की तबीअत कैसी है?" यह कहते-कहते वे बरामदे की ओर बढ़े। हरप्रसाद को देखते ही पूछा—क्यों हरप्रसाद, अब कैसे हो?

हरप्रसाद ने चीण स्वर से कहा—इस वक़्त तो बुख़ार नहीं है।

"कल ताईजी से मालूम हुआ कि तुमको बुख़ार चढ़ आया है। गड़बड़ के मारे मैं तुम्हें देखने कल नहीं आ सका। रात को बारह बजे तक खाना-पीना होता रहा। अरे, तुम तो बहुत ही दुबले हो गये हो!"

"जी हाँ, तीन साल से भुगत रहा हूँ। पाँच-सात दिन अच्छा रहता हूँ और फिर गिर जाता हूँ।"

भूपतिलाल—यह तो अच्छा नहीं। तुम्हें आब-हवा तब्दील करनी चाहिए।

इतने में हरप्रसाद की माँ आ गईं। उन्हें देखकर भूपतिलाल ने कहा—ताईजी, हरप्रसाद तो बहुत ही दुबला हो गया है।

"हाँ भैया, देखो न मुट्ठी भर हड्डियाँ रह गई हैं!"

"इसी से मैंने कहा था कि अब और लापरवाही करना ठीक नहीं। पछाँह में किसी अच्छी जगह रहकर दो-चार महीने तक हवा बदल सके तो अच्छा हो।"

"भैया, अच्छा तो हो; पर उपाय क्या है? कहाँ भेजें और किसके साथ भेजें?"

भूपतिलाल चुपचाप सोचने लगे।

हरप्रसाद ने गुनगुनाकर कहा—"अब इस तरह और कितने दिन कट सकते हैं। अगर कुछ हाथ में होता तो न-जाने कब का पच्छिम जाकर तन्दुरुस्त हो आता। जब तक बदा होगा, इसी तरह भोगूँगा।" कहकर उसने एक ठण्डी साँस ली।

हरप्रसाद की माता यह सुनकर आँचल से आँखें पोंछने लगी। भूपतिलाल की आँखें भी डबडबा आईं। उन्होंने कहा—हरप्रसाद, हमारे साथ चलोगे? इस समय इटावे की आब-हवा बहुत अच्छी कही जाती है। जड़काले भर वहाँ बने रहो तो बहुत फ़ायदा हो।

हरप्रसाद सिर झुकाये बैठा रहा। उसकी माँ ने कहा—भैया, इसे लेते जाओ। तुम्हारे साथ भेजकर मैं बेखटके रह सकती हूँ। इसकी फिर मुझे उतनी फ़िक्र न रहेगी।

"बहुत अच्छा, मैं इसे ले जा सकूँगा। अभी घर के लोगों को यहीं छोड़े जाता हूँ—फिर भी वहाँ हमारा रसोइया महाराज और नौकर-चाकर सब हैं। कोई तकलीफ़ न होगी। मैं समझता हूँ, वहाँ दो-तीन महीने रहने से बुख़ार-उखार सब भाग जायगा। पिलही भी घट जायगी। मैदान में कम्पनी बाग़ के पास ही हमारा बँगला है—बहुत अच्छी साफ़ हवा है।"

माँ ने कहा—जाओ बेटा हरप्रसाद, अपने भैया के साथ रहकर देह को सुधार लो। क्यों ?

हरप्रसाद चुप है। भूपति ने कहा—कम्पनी बाग़ ख़ूब साफ़-सुथरा बाग़ है। घूमने के लिए बीच-बीच में से कितने ही रास्ते हैं। कैसा अच्छा मैदान है। हरी-हरी दूब को देखकर मन में उमङ्ग पैदा होती है। शाम के वक़्त वहाँ साहब और मेमें खेलने आती हैं। सड़क के दोनों तरफ़ फूलों के अच्छे-अच्छे पेड़ हैं। फल-फूल और तरकारियाँ भी ख़ूब मिलती हैं। नये आलू आ गये हैं, गोभी है, और मटर की छीमी भी मिलने लगी है। घर की गायें हैं। रोज़ चार-पाँच सेर दूध होता है। असली घी है—यहाँ की तरह गड़बड़ नहीं। मांस भी महँगा नहीं और आजकल तो चिड़ियाँ भी मिलती हैं। तीतर, बटेर, चाहा, बत्तख़ वग़ैरह—बहेलिये बेचने ले आते हैं। हमारा महाराज रसोई अच्छी बनाता है।

हरप्रसाद के मन में इटावा जाने की लालसा खूब प्रबल हो उठी। वहाँ पर खाने-पीने की चीज़ों की विपुलता सुनकर उसके मुँह में लार आ गई। किन्तु भूपतिलाल से उपकृत होने में उसका जी हिचकता है। इसी से मनमार चुपचाप बैठा रहा।

भूपतिलाल ने पूछा—क्यों जी, क्या इरादा है? चलोगे?

"अच्छा दादा, ज़रा सोच-विचार कर लूँ, फिर कहूँगा।"

भूपतिलाल यह सोचकर मन ही मन हँसे कि घरवाली से पूछे बिना यह कुछ न कहेगा।

३

हरप्रसाद इटावे आ गया। उसने देखा कि भूपतिलाल का बँगला बहुत बढ़िया है। असबाब बहुत और क़ीमती है। कई नौकर-चाकर हैं। यह भी सुना कि रसोइया महाराज खूराक और पोशाक के अलावा बारह रुपये महीना पाता है। दादा की सम्पत्ति देख-देख हरप्रसाद मन ही मन कुढ़ने लगा।

उसकी तन्दुरुस्ती बहुत जल्दी सुधरने लगी। पहले हफ़्ते में एक दिन बुख़ार आया था। सरकारी असिस्टेन्ट सर्जन ने बँगले पर आकर नाड़ी देखी, थर्मामीटर से गर्मी नापी और दवा का इन्तज़ाम किया। हरप्रसाद ने देखा कि दादा ने डाक्टर को फ़ीस के चार रुपये दिये।

दूसरे हफ़्ते में खुलकर बुख़ार नहीं चढ़ा, बदन सिर्फ़ ज़रा सा गरम होकर रह गया।

तीसरे हफ्ते में कोई शिकायत न रही। भूख भी ख़ूब बढ़ गई। हरप्रसाद ने अब धीरे-धीरे सुबह-शाम घूमना शुरू कर दिया।

महीने भर में ही उसके मुँह का फीका रङ्ग बदलने लगा, घुसी हुई आँखें अपने स्थान पर दख़ल जमाने लगीं और मटका ऐसा पेट घटने लगा—यह देखकर भूपति बाबू को बड़ी ख़ुशी हुई।

हरप्रसाद ने सोचा, यह बड़े आदमी का बँगला है, दरिद्र समझकर नौकर-चाकर मेरी परवा न करेंगे। इसलिए दादा के कचहरी जाने पर वह नौकरों को बुलाकर आधी देहाती और आधी खड़ी बोली में उन्हें अपना सुयश सुनाया करता।—एक दिन उसने कहा—"गाँव के जमींदार हमीं हैं। हम दस आने के मालिक हैं और तुम्हारे साहब सिर्फ छः आने के। हमारे पुरुषाओं को राजा की पदवी मिली थी। गाँव के लोग अब हमें राजा साहब कहा करते हैं। हम मुखिया हैं न," इत्यादि।—दूसरे दिन कहा—"तुम्हारे साहब का यह बँगला है किस लेखे? देश में हमारा वह महल है जिसका नाम। उसमें तीन हिस्से हैं। एक में दफ़्तर है, दूसरे में बैठक है और तीसरे में ज़नाना है। ऐसे-ऐसे कितने ही बँगले तो वहाँ हमारे किसानों के हैं। हाँ, देश में तुम्हारे साहब का मकान इस बँगले से कहीं अच्छा है—पर हमारे मकान की तरह भारी नहीं। देश में तुम्हारे साहब के घर

पर ज्यादा से ज्यादा बारह नौकर होंगे और हमारे यहाँ हैं पूरे बाईस। इसी से घर के भारी होने का अन्दाज़ कर लो" इत्यादि। एक दिन कहा—"तुम्हारे इस बँगले में बड़ी घड़ियाँ सिर्फ़ दो हैं—एक बैठक में और दूसरी साहब के सोने के कमरे में। देश में हमारे घर कुल सत्रह घड़ियाँ हैं। चाबी देने के लिए घड़ीसाज़ नौकर है। उसे महीना देते हैं" इत्यादि।

एक दिन रसोइया महाराज को बुलाकर हरप्रसाद ने एकान्त में कहा—"देखो महाराज, दूध पर जो मलाई जम जाती है वह निकालकर रख लिया करो। हम दोपहर को खाया करेंगे। और मछलियों के सिर तुम रोज़ साहब को ही क्यों देते हो? हमें दिया करो। जब हमें दाल परोसो तब उसमें थोड़ा सा घी गरम करके छोड़ दिया करो। इसके लिए हम तुम्हें हर महीने कुछ इनाम दे दिया करेंगे। अभी ये दो रुपये ले जाओ।"—रसोइए ने हँसकर कहा—बाबू साहब, माफ़ कीजिए, रुपयों की ज़रूरत नहीं। अभी-अभी आप सँभल रहे हैं। साहब ने रोक दिया है कि 'इसे भारी चीज़ें न देना, जो जल्दी हज़म हो सके वही देना।' आप ज़रा तैयार तो हों फिर जो माँगिएगा, दिया जायगा।

भला हरप्रसाद के पास रुपये कहाँ थे। दो-तीन दिन हुए, उसने अपनी चाबी से भूपतिलाल का बक्स खोलकर दो रुपये निकाल लिये थे।

भूपतिलाल के पास एक बहुत बढ़िया फ़ाउन्टेन पेन था। वे इसे दफ़्तर न ले जाते थे। घर पर इसी क़लम से लिखते थे। एक दिन भूपतिलाल के कचहरी चले जाने पर हर-प्रसाद, उनकी टेबिल पर, चिट्ठी लिखने गया। उसने और क़लमों को पसन्द न किया, फ़ाउन्टेन पर ही कृपा की। लेकिन उसने फ़ाउन्टेन से काहे को कभी लिखा था। इधर-उधर औंधा-सीधा घुमाकर उसने फ़ाउन्टेन पेन को आख़िर तोड़ ही डाला। कुछ देर तक माथापच्ची करके उसने उस क़लम से ही लिखने की कोशिश की, अन्त में निराश होकर एक मामूली क़लम से पत्र लिखा।

कचहरी से लौटकर भूपतिलाल ने देखा कि क़लम टूट गई है। बेहरा को बुलाकर पूछा। उसने कहा—छोटे बाबू यहाँ बैठे-बैठे चिट्ठी लिख रहे थे। क़लम को भी औंधा-सीधा करके नचा रहे थे।

भूपतिलाल ने हरप्रसाद को बुलवा भेजा। क्रोध को यथासाध्य मन ही में छिपाकर पूछा—हरप्रसाद, इस क़लम को कैसे तोड़ डाला?

हरप्रसाद ने बड़े अचरज का भाव दिखाकर कहा—क़लम? कौन क़लम?

यह पाजीपन देखकर भूपतिलाल को और भी क्रोध हुआ। उन्होंने पहले की ही तरह सँभलकर कहा—हमारा यह फ़ाउन्टेन पेन।

"अयँ ? हमने तो नहीं तोड़ा। उसे तो हमने हाथ से छुआ तक नहीं। क्या मालूम किसने तोड़ा!"

भूपतिलाल ने कुछ रुखाई के साथ कहा—आज दोपहर को यहाँ बैठकर तुमने चिट्ठी लिखी थी न ?

"चिट्ठी ! हमने तो तीन-चार दिन से किसी को चिट्ठी-विट्ठी नहीं लिखी।"

"नहीं लिखी! अच्छा, इधर तो आओ। देखो यह क्या है ?" कहकर भूपतिलाल ने टेबिल पर रक्खे हुए ब्लाटिंग-पेड पर एक जगह उँगली रक्खी।

हरप्रसाद ने झुककर देखा, लिफ़ाफ़े पर ठिकाना लिखकर इस ब्लाटिंग पर उलट दिया था उसके उलटे अक्षर साफ़ छपे दीख रहे हैं। अब वह चुपचाप भूपतिलाल के मुँह को टुकुर-टुकुर देखने लगा।

भूपतिलाल ने ज़रा नर्मी के साथ कहा—यहाँ और भी तो कई क़लमें रक्खी थीं, किसी एक से काम कर लेते। यह नये ढँग की क़लम है। तुम अनाड़ी आदमी—समझते नहीं—खोलने की कोशिश करते-करते इसे तोड़ डाला।

हरप्रसाद ने कुछ देर चुप रहकर पूछा—यह क़लम कितने में आती है ?

"क्यों ?"

"जब आपको पक्का सन्देह है कि इसे मैंने ही तोड़ा है तब मैं बाज़ार से आपके लिए एक ऐसी ही क़लम ले आऊँगा।"

उसके पास कुछ और भी रुपये मौजूद थे। इन्हें उसने भाई साहब के बक्स में से ही निकाल लिया था।

हरप्रसाद के प्रति भूपतिलाल के मन में कुछ क्षमा का भाव आ रहा था। इस उत्तर को सुनने से वह तिरोहित हो गया। उन्होंने ज़रा डपटकर पूछा—यहाँ मिलेगी कहाँ ऐसी कलम? इस कारीगर के हाथ की कलम इस देश में नहीं मिलती। कलेक्टर साहब विलायत से लाये थे। हमें उपहार में उन्होंने दी थी।

और भी कुछ दिन बीते।

भूपतिलाल ग्यारह बजे कचहरी को चले जाते थे। कभी-कभी इससे पहले ही डाक आ जाती थी, किन्तु अक्सर ऐसा न होता था। उनकी टेबिल पर चिट्ठियाँ रख दी जाती थीं। कचहरी से लौटकर वे उन्हें पढ़ते थे। डाक से भूपतिलाल के नाम जितने कार्ड आते थे उन सबको हरप्रसाद आद्योपान्त पढ़ लेता था। लिफ़ाफ़े में बन्द चिट्ठियों को खोलकर पढ़ लेने की उसे बहुत इच्छा होती थी पर हिम्मत न पड़ती थी। एक दिन उसने देखा कि एक लिफ़ाफ़े पर उसी के गाँव के डाकघर की मुहर है, पते के अक्षर भी किसी औरत के हाथ के हैं। उसने सोचा, हो न हो यह भाभी की ही चिट्ठी होगी। गाँव में मशहूर था कि भूपतिलाल की दुलहिन ख़ूब लिख-पढ़ लेती है। हरप्रसाद ने सोचा कि भाभी ने दादा को न-जाने कैसी-कैसी रसीली बातें लिखी होंगी। क्रम-क्रम से चिट्ठी

पढ़ने का लोभ बढ़ता गया। अन्त में पानी से भिगोकर उसने लिफ़ाफ़ा खोलकर चिट्ठी पढ़ ली। खोलते समय लिफ़ाफ़ा ज़रा सा फट भी गया था।

कचहरी से लौटकर भूपतिलाल ने पत्र देखा। वे देखते ही ताड़ गये कि पानी लगाकर लिफ़ाफ़ा खोला गया है! खोलनेवाले को भी खोजना नहीं पड़ा। नौकरों को बुलाकर पूछा तो एक चश्मदीद गवाह भी मिल गया।

क्रोध के मारे भूपतिलाल का चेहरा सुर्ख़ हो गया। उस समय हरप्रसाद घूमने के लिए तैयार हो रहा था। थोड़ी ही देर में बाहर आया। सिर में कम्फ़र्ट लिपटा था, हाथ में छड़ी थी और ओढ़े था एक अलवान।

भूपतिलाल ने पुकारा—हरप्रसाद।

"क्या है भाई साहब?"

"तुमने यह लिफ़ाफ़ा खोला था?"

हरप्रसाद मानो आकाश से नीचे गिरकर बोला—लिफ़ाफ़ा?—नहीं, मैंने तो नहीं खोला।

भूपतिलाल ने मुँह बनाकर और दाँत पीसकर कहा—जी हाँ, आपने नहीं खोला तो फिर खोला किसने?

"क्या जानें किसने खोला है!—मैं तो कुछ भी नहीं जानता।"

भूपतिलाल ने ज़ोर से झपटकर कहा—फिर झूठ बात!

"जी नहीं, मैंने नहीं खोला। क़सम खाकर कह सकता हूँ, मैंने हाथ से भी नहीं छुआ।" वह गङ्गामाई की सौगन्ध खाने लगा।

"गङ्गामाई की क़सम खाने की ज़रूरत नहीं। तुम गङ्गाजी के बड़े भक्त न हो! फिर झूठ बोलकर छिपाने की कोशिश करते हो? राम राम—तुम बड़े नीच हो।" कहकर भूपतिलाल वहाँ से चले गये।

"हमें झूठमूठ बदनाम करते हैं"—यों बरबराता हुआ हरप्रसाद बाहर चला गया।

घूमकर लौटा तो सीधा सोने की तैयारी में। नौकरों ने ब्यालू करने के लिए बहुतेरा पुकारा पर हरप्रसाद न आया। अन्त में ख़ुद भूपतिलाल ने आकर बुलाया तो कहा, मुझे भूख नहीं लगी।

४

दिन-ब-दिन उसकी तन्दुरुस्ती सुधरने लगी। ठण्ड घट गई, अब वसन्त ऋतु है।

इन दिनों हरप्रसाद पर भूपतिलाल मन ही मन नाराज़ रहते हैं। उनके कैश-बाक्स में रुपया रक्खे रहते थे। अब रोकड़ अक्सर घट जाती है, हिसाब मिलता ही नहीं। उन्हें सन्देह था कि हरप्रसाद ही रुपये निकाल लेता है। पर कोई सुबूत या गवाह न मिला। हरप्रसाद अब ख़ूब होशियार हो गया था। अब वह ऐसे मौक़े पर हाथ मारता था जब कोई भी नौकर-चाकर उसे देख न पावे।

इटावे से औरैया पास ही है। कुछ दिन से हरप्रसाद औरैया आने-जाने लगा है। भूपतिलाल के पूछने पर उसने एक दिन कहा—"औरैया में एक महाजन के यहाँ एक जगः खाली है। उसी के लिए कोशिश कर रहा हूँ।" औरैया मे घी की मण्डी है। कई बड़े-बड़े व्यापारी हैं। भूपतिलाल ने सोचा, अगर इसे औरैया में कोई नौकरी मिल जाय तो इस झञ्झट से बचें—पाप कटे।

उस दिन इतवार था। बैठक में एक कुर्सी पर बैठे हुए भूपतिलाल समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। अकस्मात् एक ढलती उम्र के भले आदमी ने आकर अदब से सलाम किया। बगल मे वे कुछ सामान भी लिये थे।

इन्हें पहचानने के लिए भूपतिलाल ने पूछा—आप कहाँ से तशरीफ़ ला रहे हैं?

"इसी गाड़ी से औरैया से आया हूँ।"

"आपका नाम?"

"गोवर्द्धनलाल श्रीवास्तव। मैं औरैया में एक व्यापारी के यहाँ मुनीम हूँ।"

"तशरीफ़ रखिए। बड़ी कृपा की। और कहिए?"

"आज कुछ छुट्टी मिल गई। माल का चालान बन्द था, इसलिए सोचा कि इटावा हो आऊँ। आपके भी दर्शन हो जायँगे।"

"बड़ी कृपा की"—कहकर भूपतिलाल प्रतीक्षा करने लगे।

वृद्ध ने उधर-इधर की दो-एक बातें करके कहा—हर-प्रसाद आपका छोटा भाई है न ?

"जी हाँ, कुटुम्बी है।"

"वह हमारे यहाँ अकसर आता-जाता रहता है। शायद आपसे कहा भी हो।"

"नहीं तो, मुझसे कुछ नहीं कहा।"

कुछ लजाकर वृद्ध ने कहा—मेरी एक लड़की है। बारह-तेरह साल की होगी। मैं अब तक उसका विवाह नहीं कर सका। आप तो जानते ही हैं, आजकल लड़की की शादी करना कैसा विकट काम हो गया है। रुपये-पैसे की तङ्गी है। मामूली तनख़्वाह है। किसी तरह गृहस्थी की गुज़र करता हूँ। जो इजाज़त हो तो किसी दिन लड़की दिखला दी जाय। मैं उसका बाप हूँ। और तो क्या कहूँ, यही कहता हूँ कि लड़की नापसन्द न होगी।

भूपतिलाल ने अचरज के साथ कहा—लड़की दिखलाने से आपका क्या मतलब है ?

वृद्ध ने कुछ इधर-उधर करके कहा—जो आप लड़की को पसन्द कर लेंगे— तो फिर—हरप्रसाद के—

बीच में ही रोककर भूपतिलाल ने कहा—हरप्रसाद के साथ विवाह ?—असम्भव।

वृद्ध ने ज़रा मुसकुराकर विनयसूचक भाव के साथ कहा—आप शायद इसलिए असम्भव कह रहे हैं कि हरप्रसाद विवाह

कराने को राज़ी न होगा। पर उसकी फ़िक्र न कीजिए। आजकल के लड़के विवाह से पहले ही अपनी आँखों लड़की को देखना चाहते हैं। इसलिए इच्छा न रहने पर भी, एक दिन, हरप्रसाद को किसी बहाने लड़की दिखलाई जा चुकी है। सुना है, उसको पसन्द भी ख़ूब आ गई। आपसे कहना तो न चाहिए पर, माफ़ कीजिएगा, कहे देता हूँ। वह घरवालों की राय न होने पर भी विवाह कराने को राज़ी है। फिर भी मैं आपसे प्रार्थना करने आया हूँ। आपको सुनकर न-जाने कितना आनन्द होगा कि जिस हरप्रसाद ने इतने दिनों तक विवाह की बातचीत सुनना भी पसन्द नहीं किया, कितनी ही बड़ी-बड़ी जगहों की सगाई तक लौटवा दी, उसके मन में अब विवाह कराने की इच्छा हुई है। आप बड़े लोग हैं, मुझे इस सङ्कट से उबार लेंगे—मेरी प्रार्थना को निष्फल न करें। इसी आशा से आया हूँ।

यह सुनकर भूपतिलाल चुप रह गये। हरप्रसाद की इस नई करतूत का समाचार पाकर वे क्रोध के मारे आग-बबूला हो गये।

इधर मुंशी गोवर्द्धनलाल ने सोचा कि अब डिपुटी साहब इस बात का अफ़सोस कर रहे हैं कि इस बूढ़े ने लड़के को फुसलाकर दहेज में कुछ भी न देने का मन्सूबा गाँठा है। इसी कारण उन्होंने घिघियाकर कहा—"मैं बिलकुल ग़रीब हूँ, इससे यह न समझिएगा कि मैं कुछ भी न दूँगा। हमारे यही एक बेटी है—और सन्तान नहीं। इसे आपके भाई को

दान करके मैं मुक्त हो जाऊँगा। कुछ तो मेरी पैतृक सम्पत्ति है और कुछ रुपये देश के घर को रेहन करके भी ले आऊँगा। मैं पाँच सौ रुपये नक़द, एक हज़ार का गहना और पाँच सौ का ऊपर का सामान—कुल दो हज़ार का विवाह किसी तरह कर दूँगा। यह बात मैंने हरप्रसाद से कह दी है, वह इसी मे राज़ी है। मेरी ऐसी औक़ात कहाँ कि आपकी पूरी-पूरी ख़ातिर कर सकूँ। आपके लिए तो यह कुछ भी नहीं। अब मेरी दीनता की ओर ध्यान दीजिए और कृपा कीजिए ताकि मैं इस सङ्कट से उबर सकूँ।" यह कहकर वह भूपतिलाल के पैर छूने के लिए नीचे को झुका।

"हाँ हाँ, आप यह क्या करते हैं"—कहकर भूपतिलाल ने उसका हाथ पकड़ लिया। वृद्ध को फिर बिठलाकर पूछा—आपने हरप्रसाद के सम्बन्ध में अच्छी तरह जाँच-पड़ताल कर ली है न?

"जब वह आपका भाई है तब और जाँच-पड़ताल करना वृथा है। मैंने और कुछ भी पता नहीं लगाया। स्वयं हरप्रसाद ने मेरे घर में सब बातें बतला दी हैं। उसी से मुझे मालूम हो गया।"

"सब बातें कह दी हैं?—यह भी कहा है कि घर मे उसकी एक स्त्री मौजूद है?"

यह सुनकर गोवर्द्धनलाल चक्कर में आ गये। कहने लगे—स्त्री मौजूद है!—आप कहते क्या हैं? घर में स्त्री!

"जी हाँ।"

"उसने तो कहा था कि विवाह ज़रूर हो गया था पर घरवाली को गुज़रे दो बरस हो गये। कोई बाल-बच्चा भी नहीं है।"

"हाँ, लड़के-बच्चे तो नहीं हैं पर दुलहिन अब तक समूची ज़िन्दा है। अगर वह गुज़र जाती तो बेचारी सब तकलीफ़ों से छुटकारा पा जाती।"

"आप कहते क्या हैं?"

"बिलकुल ठीक कहता हूँ।"

"ओफ़्फ़ो! मैं यह न जानता था। उसने कहा था, स्त्री का पीछा हुए दो बरस हो गये—तभी से मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया, इस कारण अब तक विवाह नहीं किया। कई बड़े-बड़े घरानों की बातचीत आई, बहुत ज़ोर दिया गया पर मैं राज़ी ही न हुआ। पिछले अगहन महीने में तो लखनऊ के एक बड़े रईस के यहाँ सगाई तक हुई जाती थी। वे कपड़ा, गहना, नक़द और असबाब इतना देना चाहते थे कि पच्चीस हज़ार का विवाह होता। इतने पर भी मैंने मंजूर नहीं किया!"

भूपतिलाल—बिलकुल झूठ बात।

"देखिए, कैसा ही खानदान क्यों न हो, मैं अपनी लड़की को सौत के साथ रखना कभी पसन्द न करूँगा। मेरे दस-पाँच लड़कियाँ थोड़े हैं, यही एक लड़की है। अगर किसी अच्छे चालचलन के ग़रीब के यहाँ विवाह कर दूँगा जहाँ उसे एक ही बार खाने को मिलेगा तो भी ठीक है। लड़की सुख

से तो रहेगी। सम्पत्ति के लोभ से अथवा बड़े कुल के दिखावे में आकर मैं अपनी लड़की को सौत के हवाले कभी न करूँगा। यह कभी न हो सकेगा।"

"मालूम होता है, उसने अपने को कोई बड़ा भारी माल-दार बतलाया है।"

"जी हाँ, कहा है—ज़मींदारी की आमदनी पन्द्रह-सोलह हज़ार सालाना है। यहाँ हवा बदलने आया है। पाकेट-ख़र्च के लिए देश से गुमाश्ता २००) महीना भेजता है। वह ५०) मुझसे यह कहकर माँग लाया है कि इस महीने गुमाश्ता ने ख़र्च भेजने में देर कर दी है। तो क्या ज़मींदारी और जायदाद की बातें भी मिथ्या हैं?"

"बिलकुल झूठ! चालीस-पचास बीघा माफ़ी की ज़मीन अलबत है। लगान और लागत से जो बच जाता है उसी से किसी तरह गुज़र होती है।"

यह सुनकर बेचारा बूढ़ा सिर में हाथ लगाकर रह गया। उसने कहा—तब तो मेरी गाढ़ी कमाई के ५०) भी डूबे। मालिक की दूकान से उसी दिन लाया था। घर में एक पैसा भी नहीं रक्खा। वे रुपये उसके हवाले करके पूँजी के रुपयों से आटा-दाल ले आया था।

इसी समय देखा कि सिर पर टेढ़ी टोपी दिये, बढ़िया शर्ट के ऊपर खुले गले का अँगरेज़ी कोट पहने, हाथ में (भूपतिलाल की) रुपहली मूठ की छड़ी लिये और बङ्गाली

फैशन की उम्दा धोती पहने—छोटे नवाब की तरह—हरप्रसाद हवाखोरी करके लौट रहे हैं। झाँसे में आकर जो ससुर बनने-वाले थे उन्हें अ-स्थान पर अ-समय में देखते ही उसने मौके को टाल देना चाहा, पर भूपतिलाल ने उसे पुकार ही तो लिया।

उसके आ जाने पर भूपतिलाल ने गम्भीर स्वर से कहा—तुम्हें जाल फैलाने के लिए और कहीं जगह न मिली? इस ग़रीब आदमी को सताने के लिए तैयार हुए हो!

हरप्रसाद—सताने के लिए! किस तरह?

"झाँसा देकर इनकी लड़की को ब्याहने की कोशिश की थी न?"

"हाँ, ब्याह की कोशिश तो ज़रूर की थी—लेकिन इसमें दग़ा-फ़रेब की क्या बात? हम लोग बड़े आदमियों के ख़ानदानी लड़के हैं। दस-पाँच विवाह योंही कर सकते हैं। फिर क्यों न करें?"

"विवाह तो कर सकते हो, पर इनसे तुमने क्या-क्या कहा है?"

"क्या-क्या कहा है? यही तो कहते थे कि हम ग़रीब हैं—इस सङ्कट में फँसे हैं—हमें उबार लो। मैंने कहा, सो तो ठीक है पर मैं अपनी पहली स्त्री को क्या करूँगा? इन्होंने कहा, इसकी कोई परवा नहीं—न जाने कितनी ख़ुशा-मद की तब मैं लाचार होकर राज़ी हो गया। मैंने इसमें बेजा क्या किया है?"

वृद्ध ने कहा—हरप्रसाद ? तुमने यह क्या कहा ?—तुमने कहा न था कि स्त्री को गुज़रे दो बरस हो गये !

हरप्रसाद ने आँखें तरेरकर कहा—आप झूठ बातें करते हैं।

यह सुनकर बेचारा बुड्ढा रुआँसा होकर भूपतिलाल की ओर ताकने लगा। उसने कहा—मैं झूठ नहीं कहता, झूठ काहे को बोलूँगा। डिपुटी साहब, जो आप कृपा कर औरैया पधारें तो मैं लहमे भर में साबित कर दूँगा कि किसकी बात सच है।

हरप्रसाद—आपकी कुल बातें झूठ हैं।

भूपतिलाल ने गरजकर कहा—चुप रह बदमाश, पाजी कहीं का। दग़ाबाज़ी करता था। अब पकड़े जाने पर लज्जित होने के बदले भले आदमी की बेइज़्ज़ती करता है।

डर से रोते-रोते हरप्रसाद ने कहा—मैंने इसमें क्या बेइज़्ज़ती की ? वही तो मुझे झूठा बना रहे हैं ! हम तो—

क्रोध से काँपते हुए भूपतिलाल ने कहा—फिर बातें बनाता है ?—चुप रास्केल !—अरे चौबे !

"हाँ सरकार, हाज़िर हुआ।"

"बाबू का बक्स, बिछौना, कपड़ा-लत्ता, जूता, छड़ी—जो हो सब यहाँ ले आओ।" उन्होंने दूसरे नौकर से दो कुलियों को बुलवाया।

थोड़ी देर में हरप्रसाद का सब असबाब वहाँ लाया गया। भूपतिलाल ने कहा—सन्दूक खोलो—इनके पचास रुपये निकाल दो।

हरप्रसाद—रुपये,—रुपये तो—इस वक्त नहीं हैं।

भूपतिलाल ने डपटकर पूछा—कहाँ गये?

हरप्रसाद—वे रुपये—वे तो ख़र्च हो गये!

"ख़र्च हो गये?—कभी नहीं। खोलो ट्रङ्क; देखें तो सही!"

हरप्रसाद फिर भी टालमटोल करता ही गया।

भूपतिलाल ने कहा—देखो, जो भला चाहते हो तो सीधी तरह रुपये निकालकर रख दो, नहीं तो अभी पुलिस को बुलाते हैं, तुम्हारी सब जालसाज़ी निकल आवेगी।

तब लाचारी से हरप्रसाद ने रोते-रोते ट्रङ्क खोला। रुपये गिनते समय वह कहने लगा—"इसका रुपया तो एक भी नहीं बचा, सब ख़र्च हो गया। ये तो हमारे हैं। इन्हें हम घर से लाये थे।" गिनने में भूल हो गई। दुबारा गिनकर उसने गोवर्द्धनलाल के पैर के पास रुपये रख दिये।

अब कुली भी आ गये। भूपतिलाल ने कहा—"देखोजी, यह सामान उठाओ। बाबू जहाँ कहें वहाँ ले जाओ।" हरप्रसाद से कहा—तुम इसी दम बँगले से निकल जाओ। अब मैं तुम्हारी सूरत नहीं देखना चाहता।

गोवर्द्धनलाल पाकेट में रुपये रखकर खड़े हो गये। "जाने दीजिए सरकार, उसे माफ़ कर दीजिए। कैसा ही

हो, है तो घर का ही लड़का, आपका भाई। जाओ रे कुलियो, अच्छा सरकार अब इजाज़त है न?" कहकर मुंशीजी खिसक गये।

भूपतिलाल ने कुलियों से कहा—"उठाते क्यों नहीं सामान, क्या देखते हो? चौबे, तुम बाबू को निकालकर फाटक बन्द कर दो। फिर कभी भीतर न आने देना।" वहाँ से वे चले गये।

बँगले से निकलकर हरप्रसाद ने स्टेशन का रास्ता लिया। कुछ दूर आगे बढ़ा तो देखा कि एक पेड़ की छाया में गोवर्द्धनलाल खड़े हैं।

हरप्रसाद उनकी ओर से मुँह फेरकर जाने लगा। गोवर्द्धन-लाल ने कहा—सुनो तो सही, खड़े रहो।

हरप्रसाद खड़ा हो गया। नज़दीक आकर उन्होंने प्रेम से पूछा—अब कहाँ जाओगे?

"देश को।"

"रेल-किराये के लिए रुपये-पैसे हैं?"

"नहीं।"

"फिर?"

"ट्रङ्क में एक कोट और एक अलवान रक्खा है। स्टेशन पर अगर कोई ख़रीद ले तो रेल-किराये की फ़िक्र मिटे।"

पाकेट में हाथ डालकर गोवर्द्धनलाल बोले—"कपड़े बेचने की ज़रूरत नहीं। यह लो पाँच रुपये, टिकट ले लेना।" उन्होंने हरप्रसाद के हाथ पर पाँच रुपये रख दिये। फिर नहाने के लिए वे धीरे-धीरे यमुनाघाट की ओर गये।

देश में पहुँचकर हरप्रसाद मुहल्ले-मुहल्ले में घूम-फिर कर कहने लगा—इटावे में भूपति दादा के घर सब किरिस्तानी काम है। उनके यहाँ हिन्दू-धरम की रक्षा करके रहना मुश्किल है। मुर्गी तो वे दोनों वक्त खाते हैं। दोपहर को उन्हें अण्डे चाहिएँ। इतने पर भी मैं किसी तरह हाथ भून कर रोज़ अपने हाथ से बनाता-खाता रहा—जाति की रक्षा करता रहा। किन्तु एक दिन अपनी आँखों दादा के मुसल-मान अर्दली को ...मांस लाते देख लिया तब फिर मैं वहाँ ठहर न सका। कुली के सिर पर सामान रखवाकर तुरन्त ही निकल पड़ा। भूपति दादा ने बहुतेरा चाहा कि मैं नहा-धो लूँ और खा-पीकरके जाऊँ—क्योंकि दोपहर हो रहा था—पर मैंने एक न सुनी। उन्होंने कहा, अच्छा ज़रा सी मिठाई खाकर पानी पीलो तब जाना, पर मैं कैसे ठहरता? मैंने कह दिया, मुझे भूख ही नहीं।—तन्दुरुस्ती तो वहाँ खूब सुधर रही थी, जो महीने-दो महीने और बना रहता तो बिल्कुल ही चङ्गा हो जाता। पर धर्म के आगे प्राण की परवा कैसे करूँ?

यज्ञ-विध्वंस

१

विन्ध्याचल में देवी के मन्दिर से ज़रा हटकर गङ्गा के तट पर एक दो-मञ्ज़िला मकान दीख रहा है। बाहर दरवाज़े के ऊपर काले रङ्ग की सुबृहत् काष्ठ-पट्टिका में मोटे-मोटे अक्षरों मे लिखा है—"हिन्दू स्वास्थ्य-निवास"। नाम कुछ भी हो, सर्व-साधारण में वह 'बङ्गाली बाबू का होटल' कहलाता है। सभ्य बङ्गाली इस ओर तीर्थ-यात्रा के लिए आते हैं तो बहुतेरे यहाँ दो-एक दिन ठहर जाते हैं। इसके सिवा, हर साल, दुर्गा-पूजा से प्रथम कुछ सरल स्वभाव के स्वास्थ्यान्वेषी व्यक्ति विज्ञापन के लटकों में फँसकर यहाँ आ जाते हैं; किन्तु भोजन आदि का प्रबन्ध देखकर कोई अधिक दिनों तक ठहरता नहीं।

कार का महीना है। एक दिन प्रातःकाल इस स्वास्थ्य-निवास या बङ्गाली बाबू के होटल के कमरे के एक भाग में, एक स्वास्थ्यान्वेषी भले आदमी की नींद खुली। बन्द दरवाज़े और ईषन्मुक्त जङ्गले की राह कुछ-कुछ उजेला प्रवेश कर रहा है। आँख खुलने के अनन्तर कोई दो मिनट तक बाबू महाशय आलस्यवश शय्या पर ही लेटे रहे। इसके पश्चात्

न-जाने किस बात की याद आ जाने से चटपट उठकर बैठ गये। बिछौने के पास कुर्सी पर उनकी बनियाइन और कमीज़ रक्खी हुई थी। झटपट पहनकर दरवाज़ा खोला और आवाज़ दी—मथुरा।

बाबू का खानसामा—मथुरा—उस समय बराण्डे के कोने में खड़ा-खड़ा, छिपकर, सिगरेट को भस्म कर रहा था। चटपट अधजले सिगरेट को फेंककर बोला—हाज़िर हुआ सरकार।

जल्दी हुक्का लाने की आज्ञा देकर बाबू साहब ने जङ्गले खोल दिये। मृदु-मृदु शीतल समीर आने लगा। बिछौने पर बैठकर वे गङ्गा की शोभा देखने लगे।

इनका नाम है बङ्कुबिहारी वसु। मकान है चौबीस परगने के अन्तर्गत खालिसपुर गाँव में। ये सम्पन्न घर की सन्तान हैं। अवस्था तीस वर्ष की है किन्तु जँचती कुछ अधिक है। ये नव्यतन्त्र के हिन्दू हैं। सिर में सुपुष्ट शिखा है, देह दुर्बल है, रक्त की अल्पता के कारण पाण्डु रङ्ग है, आँखें घुसी हुई हैं, गाल पिचक गये हैं और उँगलियों में हड्डियाँ ही हड्डियाँ देख पड़ती हैं। देखते ही प्रतीत होता है कि हाँ, 'स्वास्थ्य' का इनमें बहुत कुछ अभाव है। कलकत्ते के किसी कालेज में इन्होंने एफ़० ए० तक शिक्षा प्राप्त की है, किन्तु लगातार दो बार फ़ेल होने के कारण पढ़ना छोड़ दिया। तब से घर ही रहते हैं। बीच में, मछली-मांस परित्याग कर—छापे की किताब देख-देखकर—योगाभ्यास

आरम्भ कर दिया। कोई एक साल तक योग साधने के पश्चात् स्वास्थ्य नष्ट हो गया। वह जो नष्ट हुआ सो अब तक नहीं सुधरा। बङ्कु बाबू अब योगाभ्यास नहीं करते, फिर भी उन बातों की चर्चा से हाथ भी नहीं धो बैठे हैं।

नौकर हुक्का भर लाया। धूम्र-पान करके बाबू ने हाथ-मुँह धोया। इसी बीच मथुरा ने बुहारी देकर बीच में एक कुशासन बिछा दिया। सामने ही गङ्गाजल से भरा अर्घा आदि सजा रक्खा है। रात के कपड़े उतारकर रेशमी वस्त्र पहनते-पहनते बङ्कु बाबू ने पूछा—चाय का पानी ठीक है?

"जी हाँ।"

"अरे टोस्ट तो कल कच्चे थे। क्या हमारी जाति नष्ट करेगा! आज खूब लाल सेक कर लाना। तनिक जल भी जायँ तो कोई हानि नहीं।"

"बहुत अच्छा"—कहकर मथुरा चला गया।

मुसलमान की दुकान की पावरोटी उत्तम रूप से अग्नि में शोधित न कर ली जाय तो उसको भक्षण कर लेना बङ्कु बाबू के विचार से अनाचार है। सन्ध्या-पूजा करके बङ्कु बाबू गीता का पाठ करने लगे। अब खानसामा एक प्याले भर धूमायमान चाय और एक पात्र में मासखन लगे हुए कई टोस्ट टेबल पर रख गया। गीता का एक अध्याय समाप्त करके बङ्कु बाबू कुर्सी पर जा बैठे-और चाय के साथ वही पाव रोटी भक्षण करने लगे।

चाय-पान करके बाबू साहब ने फिर हुक्का मँगाया और कहा—हुक्का भरकर एक पक्का तो ले आ। अष्टभुज जायँगे।

पहले कह चुके हैं कि इस निवास में आकर कोई बहुत दिन नहीं ठहरता; बङ्कु बाबू भी भाग जाते परन्तु उनके रुक जाने का एक विशेष कारण है। अष्टभुजा पहाड़ पर चढ़ने की सीढ़ियाँ जहाँ आरम्भ होती हैं उसके समीप ही एक बङ्गाली तान्त्रिक-संन्यासी रहते हैं। नाम है कालिकानन्द ब्रह्मचारी। उनकी सामर्थ्य कुछ असाधारण सी है। हाथ देखने का भी उन्हें ख़ासा ज्ञान है। न-जाने कितने आदमियों की कितनी कठिन व्याधियाँ उन्होंने दूर कर दी हैं। इस अन्तिम सामर्थ्य की बात सुनकर बङ्कु बाबू कई दिन से, बीच-बीच में, ब्रह्मचारीजी के पास आया-जाया करते हैं; किन्तु अभी तक कुछ सुविधा प्राप्त नहीं कर सके। बाबाजी सहज ही किसी को ओषधि नहीं देते। कोई ओषधि के लिए प्रार्थना करता है तो कहते हैं—"पिताजी, बीमारी है तो डाक्टर के पास जाइए—मैं डाक्टर या हकीम थोड़े हूँ।" बङ्कु बाबू भी अपने मर्ज़ की चर्चा करके यही उत्तर पहले दिन पा चुके हैं। जिस पर बाबा की विशेष कृपा होती है वही भाग्य से दवा पा जाता है। ओषधि कुछ विशेष नहीं है—निर्वापित होमकुण्ड में से चुटकी भर भस्म (विभूति) उठाकर बाबाजी दे देते हैं। बङ्कु बाबू का विश्वास है कि योग-बल और साइ-

किक फ़ोर्स के द्वारा उसी भस्म के परमाणुओं से एक ऐसा विपर्यय हो जाता है कि वे महौषध में परिणत हो जाते हैं।

धूम-पान का अन्त होने से पहले ही मथुरा ने एक्का आ जाने की ख़बर दी। उस समय कोई आठ बजे होंगे। गले में एक दुपट्टा डालकर और हाथ में छतरी लेकर बङ्कू बाबू बाहर आये। नौकर से कहा—ग्यारह बजे तक लौटेंगे, नहाने के लिए गरम पानी तैयार रहे।

२

झन्-झन् शब्द करता हुआ एक्का विन्ध्याचल के बाज़ार में होकर चला। एक हाथ में गङ्गाजल-पूर्ण लोटा और दूसरे में फूल आदि पूजा की सामग्री लिये हिन्दुस्तानी ललनाओं के दल, नहाये-धोये, विन्ध्या-माई के मस्तक पर जल चढ़ाने जा रहे हैं। वे ललनाएँ रास्ते में इधर-उधर हटकर खड़ी होने लगीं।

बाज़ार को पार करके प्रशस्त सड़क पर एक्का दौड़ने लगा। दोनों ओर पत्थर के कारखाने हैं—सिल-लोढ़ा, चक्की आदि गढ़े जा रहे हैं। कुछ देर में बस्ती छोड़कर एक्का मैदान में पहुँचा। एक ओर रेल की पटरी है; दूसरी ओर अन्न के खेत हैं। इस प्रकार एक मील निकल आने पर एक और बस्ती के दर्शन हुए। रास्ते के दोनों ओर बाँस की लाठियों की कितनी ही दूकानें हैं। बस्ती के अन्त में रेल की पटरी के उस पार, आम्रवन में होकर, अष्टभुजा पहाड़ का मार्ग है।

एक्के से उतरकर आश्रम में पहुँचने पर बङ्कू बाबू ने देखा—ब्रह्मचारी के सोने की कोठरी के किवाड़ बन्द हैं। उनका एक शिष्य-बालक छायामय बराण्डे में एक ओर बैठा-बैठा पोथी पढ़ रहा है। बङ्कू बाबू ने पास जाकर कहा—पाँव-लागी बाबाजी।

"सुखी रहो"—कहकर छोटे बाबाजी ने बङ्कू बाबू को आशीर्वाद दिया और कहा—बैठिए बाबूजी, आज इतने सबेरे!

"उस वक्त आने से बाबाजी के साथ अच्छी तरह बात-चीत नहीं हो सकती—बहुत भीड़ रहती है, इसी से आज इस समय आया हूँ। किन्तु बाबाजी नहीं देख पड़ते। किवाड़ क्यों बन्द हैं?"

"गुरु महाराज अभी जागे नहीं हैं।"

अभी तक नहीं उठे!—बङ्कू बाबू जानते थे कि साधु-महात्मा लोग ब्राह्म मुहूर्त्त में ही बिस्तर छोड़ देते हैं। इसी से उनको विस्मय हुआ।

"कल शनिवार था न? इसी से आज उठने में इतनी देर हो रही है। दोपहर से पहले न जागेंगे।"

यह भी खूब रही। कलकत्ते के बड़े आदमी ही तो बग़ीचेवाले भवनों में जाकर शनिवार व्यतीत किया करते हैं। रविवार को दोपहर से पहले उनकी निद्रा भङ्ग नहीं होती। साधु-संन्यासी भी क्या शनिवार मनाते हैं? इसी से बाबू ने पूछा—शनिवार था सो क्या हुआ?

चेला—प्रति शनि और मङ्गलवार की रात को होम होता है कि नहीं। रात भर होता है। जिन बाबू ने होम कराया है वे अभी-अभी यहाँ से घर गये हैं।

बङ्कु बाबू—होम होता है! किसका होम बाबाजी?

असल में बाबाजी क्या जानें कि किसका होम होता है। किन्तु ऐसा कह दे तो हल्का समझा जाय। अतएव गम्भीर भाव के साथ कहा—वह बहुत ही गोपनीय बात है।

"कौन कराता है?"

"आप ही जैसे एक बङ्गाली बाबू।"

"बङ्गाली! कौन? नाम क्या है?"

"मालूम नहीं।"

"कहाँ का रहनेवाला है?"

"मुझे मालूम नहीं।"

असल बात को जानने की बङ्कु बाबू को बड़ी उत्कण्ठा हुई। आपने पूछा—बाबू और कब तक होम करावेंगे?

बाबाजी ने अटकल से कहा—तीन रात तो हो गया, आठ रात्रि अभी और होगा; ग्यारहवीं रात्रि को पूर्णाहुति होगी।

बङ्कु बाबू को निश्चय हो गया कि निःसन्देह किसी न किसी पीड़ा की शान्ति के लिए यह होम हो रहा है। घुमा-फिराकर, अनेक प्रकार से, बाबाजी से पूछा—किन्तु सदुत्तर नहीं मिला। तब बङ्कु बाबू ने एक नये उपाय का सहारा

लिया और कहा—बाबाजी, आप अगर सब बातें हमें साफ़ बतला दें तो गाँजा पीने और भाँग-तम्बाकू के लिए आपको दो रुपये मिलेंगे।

बाबाजी के लिए दो रुपयों का मोह छोड़ देना कठिन बात थी; और यदि सच कहना चाहें तो कहना पड़े "हम कुछ भी नहीं जानते।" अतएव, बङ्कु बाबू का जी बहलाने के लिए बाबाजी ने कल्पना का आश्रय ग्रहण करना स्थिर किया। उसने कहा—अच्छा बाबू, यदि आप बिना सुने पीछा नहीं छोड़ते तो कहता हूँ, सुनिए। लाइए दो रुपये, किन्तु ख़बरदार, किसी के आगे प्रकट न हो कि ये बातें मैंने कही हैं। यदि किसी तरह प्रकट हो गईं तो गुरु महाराज आपको भी भस्म कर देंगे और मुझे भी न छोड़ेंगे।

बङ्कु बाबू ने मुसकुराकर दो रुपये दे दिये। तब बाबाजी ने कहना आरम्भ किया—

"बाबू, बड़ी अद्भुत बात है। हर रात्रि को दो पीपों में एक मन घी आता है। होम होता रहता है। जब आधा मन घी जल चुकता है तब अग्नि में से एक दिव्य सुन्दरी स्त्री निकलती है। उसको गुरु महाराज आज्ञा देते हैं—'जाओ, समुद्र में से अच्छे-अच्छे माणिक और मोती निकाल कर इस बाबू को दे दो।' हुक्म होते ही वह चली जाती है। फिर होम होने लगता है। जब घी का दूसरा पीपा फिर ख़ाली होता है तब वह स्त्री लौट आती है, मुट्ठी भर-भर के

सब चीज़ें बाबू को दे देती है। इसके पश्चात् वह आग में छिप जाती है।"

यह कहानी सुनकर बङ्कु बाबू स्तम्भित हो गये। वे सोचने लगे—"तन्त्रशास्त्र में जिसको योगिनी-साधन कहते हैं, यह वही जान पड़ता हैं। बड़े आश्चर्य की बात है!" बालक से पूछा—

"तुमने अपनी आँखों यह हाल देखा है?"

बालक ने खूब दृढ़ता के साथ कहा—जी हाँ, अपनी आँखों से देखा है।

"होम किस जगह होता है?"

"इसी घर में"—कहकर बालक ने एक जङ्गले की ओर उँगली से सङ्केत किया।—सबेरे आकर बालक ने भस्म आदि हटाई है, इसलिए वह जानता है।

बङ्कु बाबू ने जङ्गले की ओर देखा कि एक किवाड़ के कुछ अंश को कीट ने भक्षण कर छेद कर दिया है। तब मन ही मन उन्होंने एक मतलब गाँठ लिया।

कुछ देर वहाँ और बैठकर इधर-उधर की बातें कीं। इसके बाद बाबू साहब ने उठकर कहा—बाबाजी के जागने में तो अभी बहुत देर जान पड़ती है। आज तो अब चला। महाराज से मेरा प्रणाम कह दीजिएगा।—है न आज्ञा बाबाजी, पावँलागी।

बाबाजी ने हाथ उठाकर "बच्चा सुखी रहो" कहा।

३

रवि, सोम और मङ्गल ये तीन दिन बङ्कु बाबू को न-जाने किस तरह कटे। उन्होंने पुस्तक में पढ़ा था कि 'योगिनी-साधन' एक प्रयोग होता है। इसी परम गूढ़ प्रयोग को अपनी आँखों देखने की चिन्ता ने प्रबल ज्वर की भाँति उनकी समस्त देह और मन पर मानो आक्रमण किया। अँगरेज़ी के दो पन्ने पढ़कर आजकल जो लोग अति-प्राकृत पर ज़रा भी विश्वास नहीं करते उन लोगों को बङ्कु बाबू मन ही मन चिढ़ाने लगे; और बीच-बीच में गिट-पिट करके कहने लगे—
"There are more things in Heaven and Earth,
Horatio,
Than are dreamt of in your philosophy."

मङ्गलवार के दिन सूर्यनारायण अस्ताचलगामी हुए। अब चार घण्टे बीतते ही चलना होगा। आज कृष्णपक्ष की दशमी तिथि है। खूब अँधेरा है। रास्ता भी सुनसान है। रात को उस पहाड़ की ओर अकेले जाना ठीक होगा? यदि कोई दुर्घटना हो जाय तो? मथुरा खानसामा को साथ ले लें तो क्या हानि है?—बङ्कु बाबू मन ही मन ये बातें सोचने लगे। अँधेरा भी क्रमशः बढ़ने लगा।

ब्यालू करते-कराते रात के नौ बज गये। नौकर को बुलाकर कहा—एक जगह होम होता है, हम वहाँ देखने जायँगे। लौटने में जो बहुत रात हो जायगी तो वहीं सो रहेंगे। कल सवेरे आ जायँगे।

मथुरा—बहुत अच्छा।

विद्युत् के लेम्प को पाकेट में रखकर रात के दस बजे ही बड्डू बाबू घर से चल दिये। उन्होंने अण्डी की चादर ओढ़ ली। रात अधिक होने से ज़रा-ज़रा ठण्ड पड़ने लगी है। बाज़ार में जाकर किराये का एका किया।

एकावाला—कहाँ जाना होगा बाबू साहब?

"अष्टभुजा। जाने-आने का क्या लोगे?"

"इतनी रात को अष्टभुजा?"

"हमारी पूजा-मान्ता है। आधी-रात से पूजा होगी। पूजा हो चुकने पर लौटेंगे।"

"बाबू, उस पहाड़ के नीचे सारी रात हम कैसे ठहरे रहेंगे? वहाँ आदमी-वादमी कोई नहीं है।"

"तो क्या होगा?"

एकेवाले ने सोचकर कहा—अगर आप एक काम करें तो हो सकता है।

"बोलो, क्या?"

"मैं आपको पहाड़ के नीचे तक पहुँचाकर उस गाँव में लौट आऊँगा जो रेल की गुमटी के पास है। वहीं आपकी राह परखता रहूँगा। जब आपका काम हो जाय तब उसी गाँव में आ जाइए। तुरन्त एका जोत दूँगा। बहुत दूर नहीं है—बहुत होगा तो आध मील होगा। और आधा किराया मुझे पेशगी दे दीजिए।"

लाचार होकर बङ्कू बाबू इसी शर्त पर राज़ी हो गये। किराया पूछा तो मौक़ा देखकर एक्केवाला चौगुना माँग बैठा। उतना ही किराया देना स्वीकार करके बाबू साहब रवाना हुए।

आम के बाग़ में एक बड़ा सा पक्का इँदारा है। वहीं एक्के को रोककर बङ्कू बाबू उतर पड़े। एक्के की मामूली लालटेन टिमटिमा रही है। उसके प्रकाश में वैसा कुछ विशेष देख नहीं पड़ता। चारों ओर सुनसान है। एक्केवाले ने कहा—और कुछ आगे तक आपको पहुँचा आऊँ?

"नहीं, रहने दो; तुम रेल की गुमटी के पास एक्का रखना। लौटकर हम तुम्हें जगा लेंगे।" यह कहकर बङ्कू बाबू ने जूते उतारकर एक्के में ही रख दिये।

एक्का चला गया। उस मामूली लालटेन का उजेला भी एक्के के साथ ही अन्तर्हित हो गया, इससे अन्धकार और भी भीषण हो गया। बङ्कू बाबू को ऐसा प्रतीत होने लगा मानो चारों ओर अदृश्य डाकिनी-योगिनी-गण थेई-थेई करके नाच रहे हैं। डर के मारे उनका दिल धड़कने लगा।

आश्रम के स्थान की ओर अटकल से बङ्कू बाबू धीरे-धीरे अग्रसर होने लगे। रास्ते में पत्थर के टुकड़ों से टकराने लगे, पैरों में काँटे छिदने लगे। ऊँची-नीची जगह पैर पड़ने से दो-एक बार गिरते-गिरते बचे। बिजली की लालटेन जला-कर ज़रा रास्ता देख लें—फिर रोशनी बुताकर, उस मार्ग

से आगे बढ़ें, फिर क्षण भर के लिए प्रकाश कर लें। बेचारे को लालटेन का उजेला करने की हिम्मत न हो।

कुछ दूर जाने पर, वृक्ष-शाखाओं के भीतर होकर, ऊपर की ओर एक जगह उजेला देख पड़ा। सोचा कि वह देवी अष्टभुजा का मन्दिर है। और कुछ आगे बढ़ने पर साधु-बाबा के आश्रम से निर्गत क्षीण आलोक-रश्मि के भी दर्शन हुए। क्रम से बड़ी सावधानी के साथ पैर रखते हुए बङ्कू बाबू आश्रम के समीप पहुँचे।

बाहर कोई नहीं है। किवाड़ बन्द हैं। जङ्गले के दो-एक छेदों में होकर ज़रा सा प्रकाश निकलता है। पैरों की आहट बचाकर, सिड्ढियों पर चढ़कर बराण्डे में पहुँचे। पहले देखे हुए उसी जङ्गले के पास बङ्कू बाबू जा खड़े हुए। छेद में आँख लगाकर देखा—धूनी जल रही है, कुछ हटकर कालिकानन्द बैठे हैं। उनकी ओट में एक और व्यक्ति है—बङ्कू बाबू उसे भली भाँति देख नहीं सके। कालिकानन्द लाल वस्त्र पहने हैं, गले में रुद्राक्ष की माला पड़ी है। लम्बी-लम्बी जटाएँ मस्तक पर बँधी हुई हैं। सामने एक पात्र मे कुछ पूरियाँ और एक कटोरे में मांस रक्खा है। एक बोतल विलायती मदिरा भी मौजूद है। किसी एक सफ़ेद पदार्थ मे—जिसका कटोरी का आकार है—बाबाजी ने मदिरा उँड़ेली। उँगली से ज़रा सी मदिरा उस पूरी और मांस पर छिटक दी। फिर कुछ मन्त्र से पढ़ने लगे, इसके पश्चात् दो

पूरियों पर थोड़ा सा मांस रक्खा और किवाड़ खोलकर बाहर फेंक दिया। इस समय दूसरे व्यक्ति को देखने का अवकाश बङ्कु बाबू को मिल गया। वह परिचित सा जँचा किन्तु धूनी के उस साधारण उजेले में उसको अच्छी तरह पहचान न सके। कालिकानन्द ने लौटकर कहा—चन्द्रनाथ आओ, प्रसाद पाओ।

नाम सुनते ही बङ्कु बाबू का सन्देह दूर हो गया। वह मनुष्य उठकर समीप आया। बङ्कु बाबू ने देखकर अच्छी तरह पहचान लिया। चन्द्रनाथ और कोई नहीं, बङ्कुविहारी के बहनोई सुरेन्द्रनाथ का बड़ा भाई है।

बङ्कु बाबू सुन चुके हैं कि एक महीने से अधिक हुआ, चन्द्रनाथ घर छोड़कर पश्चिम में भ्रमण करने गये हैं। बङ्कु बाबू को इस बात का स्वप्न में भी ज्ञान न था कि चन्द्रनाथ विन्ध्याचल में हैं और योगिनी-साधन की धुन में प्रवृत्त हैं।

भोजन और मद्य-पान कर चुकने पर दोनों ही हाथ धोने और कुल्ला करने को बाहर आये। उस समय जङ्गल के समीप से हटकर बङ्कु बाबू घोर अँधेरे में जा छिपे।

हाथ-मुँह धोकर, किवाड़ बन्द करके, दोनों धूनी के पास जा बैठे। लोहे के एक साफ़ तवे पर कालिकानन्द कोयले से कुछ लिखने लगे। लिख चुकने पर मुसकुराकर कहा—देखो, तुम्हारे भाई के चेहरे के साथ मेल खाता है न?

इसके पश्चात् अनेक प्रकार की प्रक्रियाएँ आरम्भ हुईं। कालिकानन्द ने कहा—देवी का ध्यान करो। मन ही मन

ख़याल करो कि दीर्घ आकार की कृष्णवर्णा माँ नग्न खड़ी हैं। उनके दोनों हाथों में दो नरमुण्ड हैं जिन्हें वे चबा रही हैं। इसी रूप का ध्यान करो।

आँखें बन्द करके चन्द्रनाथ ध्यानस्थ हो गये। ध्यान के अन्त में कालिकानन्द उससे और भी कई एक मन्त्रों का उच्चारण कराने लगे। सब बातों को बङ्कु बाबू अच्छी तरह सुन नहीं सके। पर ये बातें भली भाँति समझ में आ गईं—

"ॐ शत्रुनाशकारिण्यै नमः। सुरेन्द्रनाथस्य शोणितं पिब पिब—मांसं खादय खादय—ह्रीं नमः।"

यह सुनते ही बङ्कु बाबू के सिर पर वज्र सा गिर पड़ा। उनके हाथ-पैर थर-थर काँपने लगे। साँस रुकने का उपक्रम हुआ। स्पष्ट समझ गये कि यह योगिनी-साधन नहीं है—सुरेन्द्रनाथ के मार डालने के लिए मारण-यज्ञ हो रहा है।

काँपते-काँपते बङ्कु बाबू वहीं बराण्डे में बैठ गये। उन्हें बेहोशी घेरने लगी। क्रम से वे धरती पर लोटकर अचेत हो गये।

इस तरह कितना समय बीता, बङ्कुविहारी को कुछ मालूम नहीं। चेत होने पर देखा कि पश्चिम गगन में क्षीण-देह चन्द्र का उदय हुआ है। तब भी भीतर से क्षीण मन्त्र-ध्वनि सुन पड़ती थी। स्पष्ट सुना—"सुरेन्द्रनाथं मारय मारय—तस्य शोणितं पिब पिब—मांसं खादय खादय—ह्रीं नमः।"

बङ्कु बाबू तब वहाँ से चुपचाप धीरे-धीरे चले आये। आम्र-वन के भीतर, मद्धिम चाँदनी में, बड़े कष्ट से मार्ग पहचानकर चलने लगे। उनके हृदय में ढेंकी यन्त्र की तरह आघात होने लगा। हाथ-पैरों में बल नहीं है, बुद्धि भी ठिकाने नहीं है।

दस मिनट के मार्ग को आध घण्टे में तय करके वे क्रम से रेल की गुमटी के पास पहुँचे। एक्केवाले को जगाया और एक्के में सवार होकर स्वास्थ्य-निवास में लौट आये।

दूसरे दिन उनके चेहरे और आँखों को देखकर सभी विस्मित हुए। खानसामा बारंबार पूछने लगा—बाबू साहब, आपको क्या कोई दर्द-पीर है?

बङ्कु बाबू ने क्षीण स्वर में कहा—हाँ, तबीअत ठीक नहीं।

दिन भर बैठे-बैठे बङ्कु बाबू सोच-विचार करते रहे। चन्द्रनाथ और सुरेन्द्रनाथ, परलोकवासी ज़मींदार कैलासचन्द्र दत्त के बेटे हैं—हाँ, ये दोनों सहोदर नहीं, वैमात्रेय भ्राता हैं। पिता की मृत्यु के पश्चात् चन्द्रनाथ ही ज़मींदारी का प्रबन्ध किया करते थे। सुरेन्द्रनाथ कलकत्ते के किसी कालेज में पढ़ते थे। उन्हीं दिनों वहाँ सुरेन्द्र के साथ बङ्कु बाबू का परिचय हुआ। तीन साल हुए, बङ्कु बाबू की एकमात्र भगिनी श्यामारानी के साथ सुरेन्द्र का विवाह हो गया है। इसके बाद बी० ए० पास करके सुरेन्द्र घर लौट गया; कहा कि न तो

नौकरी करूँगा, और न क़ानून का अध्ययन। घर पर रहकर बड़े भाई के साथ अपनी सम्पत्ति के रक्षणावेक्षण करने का उसने निश्चय प्रकट किया। ऐसा यत्न करेगा जिसमें ग्राम की उन्नति हो, और प्रजा की भी उन्नति हो। भाई के इस सङ्कल्प को चन्द्रनाथ ने एक विचित्र कल्पना-जाल समझा था। इस सङ्कल्प से उसे विरत करने के लिए उन्होंने प्रयत्न भी किया किन्तु सुरेन्द्र अडिग रहा। फलतः चन्द्रनाथ के सिंहासन पर एक और भाग आ बैठा। ज़मींदारी से उनका एकाधिपत्य घटने लगा। दोनों के आदर्श तथा धर्म-बुद्धि की भिन्नता के कारण पद-पद पर सङ्घर्ष होने लगा। जिस किसान पर शासन करने के लिए, उसके घर-द्वार को मटिया-मेट कर देने के लिए, चन्द्रनाथ बद्धपरिकर हों, प्रकाश्य भाव से सुरेन्द्रनाथ उसी का पक्ष ले। इतने दिन से चन्द्रनाथ मत्स्य-मांस-घृत-दुग्ध और नक़द षोडशोपचार द्वारा थाने के दारोग़ा की पूजा करते आ रहे थे। उस दारोग़ा ने दो किसानों के एक मुक़द्दमे में एक फ़रीक़ से पान खाने के लिए २००) लिये थे—सिर्फ़ इसी अपराध पर सुरेन्द्रनाथ ने उस कृषक को उत्तेजित करके, अपने ख़र्च से दारोग़ा पर घूस लेने का मामला चलवा दिया। इस प्रकार दोनों भाइयों में क्रम से विच्छेद बढ़ने लगा। अन्त में चन्द्रनाथ ने एक किसान को फुसला-कर उससे सुरेन्द्रनाथ पर एक झूठी फ़ौजदारी नालिश करा दी। अदालत के विचार से सुरेन्द्र निर्दोष प्रमाणित हुए। उसी

दिन, अदालत से ही, चन्द्रनाथ लापता हो गये। यह आज दो महीने की बात है। बङ्कु बाबू को ये बातें मालूम थीं। मनोमालिन्य कितना ही क्यों न हो, बड़े भाई चन्द्रनाथ ने अपने छोटे भाई की जान लेने के लिए जिस क्रूर कर्म का सहारा लिया है, उससे बङ्कु बाबू क्रोध, भय और दुःख के मारे विह्वल हो गये।

उन्हें मन में दृढ़ विश्वास है कि यह तान्त्रिक अनुष्ठान निष्फल होने का नहीं। इस विषय की उनके पास एक पुस्तक थी; उसे खोलकर पढ़ने लगे। उसमें लिखा है—

जपेदेकादशाहे च रोगः स्यान्नात्र संशयः।
दण्डाधिकैकविंशाहे मृत्युरेव रिपोर्भवेत्॥

बङ्कु बाबू सोचने लगे—'बाबा के चेले ने कहा है, यह प्रयोग तीन रात्रियों का हो चुका है, आठ रात्रियों में और होगा।' सो उसने यह सच्ची ही ख़बर दी है। उसने जो योगिनी-साधन का वर्णन किया था वह ठीक नहीं निकला; वह रात को आश्रम में तो रहता ही नहीं; मालूम किस तरह होगा! साफ़ मालूम होता है कि दो रुपये के लोभ से उसने झूठ बात कह दी है। यह क्रूर कर्म सात रात तक अभी और होगा—इसके बाद सुरेन्द्र बीमार होगा—इक्कीस दिन के पश्चात् मृत्यु निश्चित है। दुःख के मारे बङ्कु बाबू मुर्दार हो गये। एकमात्र बहन श्यामारानी है, उसका ब्याह हुए अभी तीन ही वर्ष हुए हैं, पन्द्रह वर्ष की है—वह विधवा होगी? क्यों

अच्छी लड़की है—बहुत सुन्दरी है—प्रतिमा सी जँचती है। बड़े दुलार की बहन है—उसका भाग्य क्या इस तरह फूट जायगा?—श्यामारानी के वैधव्य-वेश को बङ्कु बाबू कल्पना-द्वारा देखने और बार-बार रूमाल से आँसू पोंछने लगे।

उपाय क्या है? इस विपत्ति से क्योंकर छुटकारा मिले? बहुत सोच-विचार करके बङ्कु बाबू ने आज ही रात की गाड़ी से मनोहरपुर जाने का निश्चय किया। सुरेन्द्र को सब बातें खुलासा बतलाकर और सलाह करके कुछ न कुछ उपाय करना होगा।

स्वास्थ्यनिवास में ही मथुरा को ठहरने की आज्ञा देकर बङ्कु बाबू रवाना हो गये। कह गये कि दो-चार दिन में ही लौटेंगे।

दूसरे दिन सुरेन्द्रनाथ मनोहरपुर में दिन के तीसरे पहर अपनी भौजाई से बातचीत कर रहा था। सुरेन्द्र की अवस्था कोई २४ वर्ष की है—साफ़ रङ्ग का कान्तिमान् युवक है। दाढ़ी-मूँछ घुटी हुई है। सुनहरे फ्रेम का "पाँस-ने" चशमा नाक को दबाये हुए है; उसके एक कोने से पतली रेशमी 'कार' ने उतरकर उसके गले को घेर लिया है। भौजाई भी सुरेन्द्र की ही हमजोली हैं—या वर्ष-दो वर्ष उससे बड़ी निकलें। नाम कुमुदिनी है। उनका रङ्ग सुरेन्द्र की अपेक्षा साफ़ है। किनारदार साड़ी पहने हुए हैं। चेहरा उदास है। टेबिल पर किताबें बिखरी पड़ी हैं। उसी के पास कुर्सी पर सुरेन्द्र बैठा है। सामने तनिक अन्तर पर रक्खे हुए कोच के एक किनारे कुमुदिनी बैठी हुई हैं।

भौजाई कह रही हैं—देवर, जाओ—उन्हें लौटा लाओ जो होना था, हो गया। अब क्या उसके लिए दोनों भाइयों के बीच बिगाड़ बना रहेगा। भला किस घर में ऐसा नहीं होता? लड़ाई-झगड़ा, मनमुटाव हो जाता है—फिर मेल-मेल हो जाया करता है। तनिक भी भेदभाव नहीं रहता।

सुरेन्द्र—भाभी, ऐसी ही असीस दो। यही हो। किन्तु मेरा क्या दोष है?

"मैं तुम्हें दोष कब देती हूँ? उन्होंने तुम्हारे साथ कितना ही बुरा सलूक क्यों न किया हो, हैं तो तुम्हारे बड़े भाई—घर के मुखिया। बड़े भाई के प्रति तुम्हारा क्या कुछ कर्तव्य नहीं है? जो हो चुका है उसको भूल जाओ। जाओ, उनको घर लौटा लाओ। दशहरा आ रहा है—जो लोग बहुत ही दीन-दुखी हैं, रोज़ी के लिए परदेश में पड़े हैं वे भी इस समय हँसी-ख़ुशी से घर आते हैं—अपने भाई-बहन, बाल-बच्चों से मिलकर सुखी होते हैं। और तुम्हारे बड़े भाई—जो इतनी बड़ी ज़मींदारी के मालिक हैं—क्या घर-द्वार छोड़कर इस समय मारे-मारे फिरते रहेंगे?" अन्त की बातें कहते-कहते भावज का गला भर आया—तीसरे पहर के उजेले में उनकी आँखों के आँसू चमकने लगे।

उस दिन चन्द्रनाथ जो कचहरी से पश्चिम की यात्रा को गये सो लगभग महीने भर तक उन्होंने घर कोई समाचार ही नहीं भेजा। महीने के अन्त में मथुरा से उनकी चिट्ठी

आई। अनेक तीर्थों में घूम-फिरकर अब वे कुछ दिन से विन्ध्याचल में ठहरे हुए हैं। ग्राम मुख्तार के नाम बीच-बीच में पत्र आता है, वह रुपये भेज देता है। चन्द्रनाथ कुछ लिखते ही नहीं कि घर कब तक लौटेंगे।

आज तीसरे पहर देवर-भावज के बीच यही बातचीत हो रही थी। कुमुदिनी सदा उदास रहती हैं, बीच-बीच में रोया करती हैं। इससे सुरेन्द्र को बहुत दुख होता है। उसे यह सोचते हुए भी अच्छा नहीं लगता कि मेरे लिए ही भाई को घर-गिरिस्ती छोड़नी पड़ी है। सुरेन्द्र अब समझता है कि 'मुझे इस तरह बड़े भाई की विपक्षता न करनी चाहिए थी।' बहुत ही ऊबकर, चिढ़कर उन्होंने यह काम कर डाला है। माथा झुकाकर सुरेन्द्र ने धीरे-धीरे कहा—भौजी, मुझे कुछ उज्र नहीं है; भाई साहब जो अच्छी तरह रहें तो रत्ती भर गड़बड़ न हो। उन्होंने मेरे साथ जैसा कुछ सलूक किया है उससे मैं नाराज़ नहीं हुआ या दुःखित नहीं हुआ—यह बात मैं नहीं कह सकता; और जो कहूँ तो झूठ बात होगी। किन्तु वह सब भूल जाने को मैं तैयार हूँ।

"विन्ध्याचल कितनी दूर है ?"

"काशी और प्रयाग के बीचोंबीच होगा।"

"तो अब देर न करो भले देवर,—" कहकर विनती-पूर्ण दृष्टि से कुमुदिनी सुरेन्द्र की ओर देखने लगीं।

"भौजी, मैं जाने को तैयार हूँ। किन्तु क्या मालूम, वे आवेंगे या नहीं। जो मेरी बात न रक्खें तो? तुम तो जानती ही हो कि मुझपर उनकी कैसी कृपा है।"

"अब उनका दिल साफ़ हो गया है। पिछली बातों को जाने दो। वे ताव में आकर कभी-कभी ऐसे काम कर बैठते हैं, किन्तु जब समझ लेते हैं कि बेजा काम हो गया है तब उन्हें बेहद पछतावा हुआ करता है। मैं तो जब से इस घर मे आई हूँ तभी से देखती आती हूँ न। देख न लो, भला तीर्थों में ही क्यों चक्कर लगा रहे हैं?—उनको मन में पछतावा ज़रूर हुआ है।"

"अच्छा तो मैं परसों रवाना हो जाऊँगा।"

इस बात से कुमुदिनी को बहुत आश्वासन मिला। उन्होंने कहा—अच्छी बात है, उन्हें अपने साथ लिवा लाओ। वे शर्म के मारे नहीं आ सकते। वे यही सोचते हैं कि छोटे भाई के साथ ऐसा बर्ताव कर आये हैं—अब वहाँ जाकर उसे मुँह किस तरह दिखाया जाय? जो तुम जाकर उन्हें साथ ले आओगे तो उनकी झिझक हट जायगी।

दिन डूबने का समय हुआ। देवर को कुछ जल-पान कराने का बन्दोबस्त करने के लिए कुमुदिनी बाहर गई। सुरेन्द्र ने कुर्सी घुमाकर टेबिल के सामने कर ली और दराज़ से साबर का चमड़ा निकालकर अपने "पाँस-ने" चश्मे को पोंछकर साफ़ कर लिया फिर गो-पालन के

सम्बन्ध में एक अँगरेज़ी पुस्तक खोलकर अध्ययन में मन लगा दिया।

५

भावज के जाने पर कोई पाँच मिनट में सुरेन्द्र की स्त्री श्यामारानी पैरों की आहट बचाकर भीतर आई और पीछे से कौतूहल-पूर्ण दृष्टि से स्वामी की पुस्तक को देखने लगी।

वैज्ञानिक गोशाला के वर्णन में मग्न सुरेन्द्र के नासापुटों में श्यामारानी के केशकलाप से निकला हुआ मृदु सुगन्ध पहुँचा। उसके बहुत ही मृदु निःश्वास का शब्द भी सुरेन्द्र के कानों में गया। इससे उसका मन गोशाला से बाहर निकल आया। अचानक पीछे की ओर हाथ फैलाकर उसने फ़ौरन् श्यामा का अञ्चल पकड़ लिया।

पकड़ी जाने पर बालिका खिलखिलाकर हँसने लगी। बन्दिनी को खींचकर सुरेन्द्र ने बग़ल में कर लिया।

"छोड़ो—छोड़ो, कोई आ जायगा।"

"चोर को पकड़ा है। छोड़ क्यों दूँ!"

श्यामा ने आँचल को ज़ोर से छुड़ाते हुए कहा—ऊँह, करते क्या हो? छोड़ दो, किवाड़े खुले पड़े हैं—कोई देख लेगा; छोड़ दो, पर्दा गिरा आने दो।

"जुर्माना लूँगा तब छोड़ूँगा।"

निर्मम विचारक ने उसी दम जुर्माना वसूल कर लिया। फिर छुटकारा देकर कहा—अच्छा, पर्दा गिरा दो।

पर्दा गिराकर श्यामा स्वामी की बग़ल में खड़ी हो गई। पुस्तक को उत्सुकता-पूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—कौन सी किताब है? इसमें तसवीरें हैं?

"हाँ हाँ, देखोगी?" कहकर सुरेन्द्र पन्ने उलट-पलट-कर दिखाने लगा। तरह-तरह के बछड़े-बछियों और गोशाला वग़ैरह की तसवीरें थीं।

"तो सब गोरुओं की ही कहानियाँ हैं?"

"हाँ।"

"राम-राम। बैठे-बैठे यही पढ़ते हो?"

"क्यों? गोरू की कहानी क्या बुरी है? तुम्हारी अँगरेज़ी की पहली किताब में भी तो कितनी ही गोरू, घोड़े, हड़गिल्ले और पक्षियों की कहानियाँ हैं।"

पिछले साल श्यामारानी ने बङ्गाली भाषा की पढ़ाई समाप्त करके अँगरेज़ी की पहली किताब पढ़ना शुरू किया था। किन्तु गधे के पन्ने तक पढ़कर आगे किसी तरह पढ़ना नहीं हुआ। इधर कई महीने से पढ़ाई बन्द है।

सुरेन्द्र ने कहा—जो थोड़ा सा सीख लिया था वह भी भुला दिया। किताब लाओ, पढ़ा दूँ।

"तुम्हें गोरू की कहानी अच्छी लगती है सो तुम्हीं पढ़ो। मैं वह कुछ न पढ़ूँगी। अब वह सब पढ़ने की मेरी उम्र नहीं है। भला यह गोरू-बछड़े-हड़गिल्ले वग़ैरह की कहानी पढ़ना अब मेरे लिए ठीक होगा —— लगेगा? छि.।"

सुरेन्द्र ने हँसकर स्त्री को पास खींचकर पूछा—तो इस उम्र में तुम्हें काहे की कहानी अच्छी लगती है ?

श्यामारानी ने गम्भीर मुँह करके कहा—जिनमें ठाकुरजी की, देवताओं की कथा है—जैसे मृणालिनी, विषवृक्ष, स्वर्णलता वग़ैरह। इन्हें पढ़ने से घड़ी भर मन भी अच्छा रहता है और परकाल भी सुधरता है।

यह निडर स्वीकारोक्ति सुनकर सुरेन्द्र हँसने लगा। इसी समय बाहर से नौकरनी ने आवाज़ दी—बहूरानी, छोटे बाबू के नाश्ते को लाई हूँ।

श्यामारानी ने तुरन्त टेबिल पर से पुस्तकें और काग़ज़ हटाते हुए कहा— ले आओ।

भीतर आकर नौकरनी जल-पान का सामान आदि रख-कर चली गई।

सुरेन्द्र नाश्ता करने लगा। टेबिल पर काग़ज़-पत्रों को क़रीने से रखते हुए श्यामा ने पूछा—हाँ जी, तो तुम परसों विन्ध्याचल जा रहे हो ?

"हाँ, तुम्हें इतनी जल्दी ख़बर मिल गई ?"

"तो मुझे भी साथ ले चलो ?"

"तुम्हें !—वहाँ जाकर क्या करोगी ?"

"क्या करूँगी ? तीर्थों में जाकर लोग क्या किया करते हैं ? देवी मैया का दर्शन करूँगी।"

"मैं वहाँ शायद एक ही दो दिन ठहरूँ। सिर्फ़ दादा को बुला लाना है। दो-एक दिन में ही लौट आऊँगा।"

"और मैं कब वहीं ठहरी रहने को कहती हूँ? तुम लोग भले ही मुझे बुढ़िया समझ लो, असल में अभी तीर्थ-वास करने के मेरे दिन दूर हैं। मैं भी दो ही एक दिन ठहर-कर तुम्हारे साथ लौट आऊँगी।"

जल-पान करके गिलास उठाकर सुरेन्द्र ने गम्भीर भाव से कहा—नहीं जी नहीं, तुम जाकर क्या करोगी?

"कह तो दिया, देवी माई के दर्शन करूँगी। और बहुत दिनों से मँझले भैया को देखा नहीं है सो उन्हें भी देख आऊँगी।"

"तो क्या बङ्कुविहारी विन्ध्याचल में ही हैं?"

"हाँ।"

"वहाँ कब से हैं?"

"कोई पन्द्रह दिन से। आज ही उनकी चिट्ठी आई है।"

जल-पान के पश्चात् रूमाल से मुँह पोंछते-पोंछते सुरेन्द्र ने कहा—अच्छा हुआ। उन्होंने अपना क्या पता-ठिकाना लिखा है?

"याद नहीं है। चिट्ठी ले आऊँ"—कहकर श्यामा चली गई। चिट्ठी लाकर स्वामी को दिखला दी। यह तीन दिन पहले विन्ध्याचल में लिखी गई है। पढ़कर सुरेन्द्र ने

हुआ मैं इन्हीं के डेरे में ठहरूँगा

"वह तो होटल है। मैं कहाँ रहूँगी? मँझले भाई को तार के ज़रिए इत्तिला दे दो—हम लोगों के दो-चार दिन ठहरने के लिए एक घर ठीक कर लें।"

पान का बीड़ा खाकर सुरेन्द्र ने कहा—नहीं, नहीं, पगली! तू कहाँ जायगी।

बार-बार वही एक बात! लगातार मनाही—वही नकार का सिलसिला। अब श्यामारानी रूठ गई। रँगे हुए होंठ फुलाकर उसने भौंहें सिकोड़कर कहा—मैं पगली! मैं कहाँ जाऊँगी!—कहीं ले चलने को कहा कि पगली बना दी गई! आप सब जगह की सैर करेंगे लेकिन मुझे कहीं साथ न ले जायँगे। अभी उस दिन कलकत्ते हो आये—मैंने कितनी ख़ुशामद करके कहा कि मुझे भी दिखला लाओ, शनिवार है, नाटक देख लूँगी, सो न ले गये न ले गये। मैं पानी में तो बहती आई हूँ!"—आँखों में आँसू आ गये थे; बात पूरी होते न होते टपकने लगे।

"हैं! यह क्या करती हो!" कहकर सुरेन्द्र ने अपनी बालिका-वधू का हाथ थामकर उसे पास खींच लिया। रूमाल से उसकी आँखें पोंछते-पोंछते कहा—अच्छा, अच्छा, अबकी जब कलकत्ते जाऊँगा, तुम्हें भी साथ लेता जाऊँगा। शनिवार और इतवार, दोनों दिन नाटक देख लेना।

श्यामा ने हाथ छुड़ाकर कहा—नहीं, मैं तो विन्ध्या-चल चलूँगी।

इसी समय बाहर दरवाज़े पर चौखट पर हाथ मारकर नौकरनी ने कहा—छोटे बाबूजी, आपकी ससुराल से कोई आये हैं।

सुरेन्द्र और श्यामा दोनों चौंक पड़े। सुरेन्द्र ने पूछा—कौन आया है?

"बङ्कु बाबू।"

श्यामा ने कहा—मँझले भैया आये हैं!

"मँझले भैया!" कहकर सुरेन्द्र फुर्ती से बाहर गया और बड़ी आवभगत से हाथ थामकर साले को अन्तःपुर में ले आया।

६

दिया-बत्ती लग जाने पर एक सूने कमरे में बैठकर सुरेन्द्र ने पूछा—बङ्कु दादा, क्या मामला है? मैं तो अन्दाज़ भी नहीं कर सकता कि आप कौन सी विपत्ति की बात कहेंगे।

"यहाँ न कहूँगा। क्या जानें, कोई सुन ले। बहुत ही गुप्त बात है।"

"नहीं, यहाँ कोई न आवेगा। आप बेखटके कहिए।"

तब बङ्कु बाबू ने सब हाल खोलकर कह सुनाया।

सुनकर सुरेन्द्र इस तरह बैठ रहा मानो उसे लकवा मार गया हो।

बङ्कु बाबू ने कहा—अब इसका क्या उपाय किया जाय?

सुरेन्द्र जैसा बैठा था वैसा ही बैठा रहा; उसने भला-बुरा कुछ उत्तर न दिया।

बड़े बाबू कहने लगे—मैं आज लगातार दो दिन से सोच-विचार में पड़ा हूँ। फ़िक्र के मारे मेरे तो होश-हवास गुम होने को हैं। किसी तरफ़ किनारा नहीं देख पड़ता। ये बातें दिल्लगी में उड़ा देने लायक़ नहीं हैं। मैं तो समझता हूँ कि उसी श्रेणी का अथवा उससे भी बढ़कर प्रभावशाली यदि कोई तान्त्रिक संन्यासी मिल जाय तो इस यज्ञ को निष्फल करने के लिए उसके द्वारा कोई अनुष्ठान करा दिया जाय। किन्तु उस ढंग का आदमी एकाएक ढूँढ़ने से कहाँ मिलेगा! तुम किसी को जानते हो?

सुरेन्द्रनाथ ने माथा हिलाकर जतलाया—नहीं।

तनिक ठहरकर बड़े बाबू कहने लगे—एक और उपाय हो सकता है; किन्तु यह नहीं जानता कि उससे कुछ फल होगा या नहीं। हम सब—तुम, श्यामा और मैं—विन्ध्याचल में जाकर उसी साधु के चरणों में गिरें। उसको कचा हाल सुना दिया जाय और कहा जाय—"बाबा, उसने कोई अपराध नहीं किया है, उसका तिल बराबर भी दोष नहीं—आप उस बेचारे का क्यों सत्यानाश करते हैं? इस लड़की को, जिसके अभी दूध के दाँत तक नहीं गिरे, आप किस अपराध में विधवा करेंगे?"—श्यामा का मुँह देखने से भी क्या बाबा के जी में दया न उपजेगी? तुम्हारी क्या राय है?

सुरेन्द्र ने कहा—भाई साहब, क्या आप का ऐसे गोरख-धन्धों पर विश्वास है? मैं बैठा हूँ यहाँ और वह है सैकड़ों

मील के फ़ासले पर। कोयले से लोहे के तवे पर मेरी मूर्त्ति बनाकर और, "मारय मारय शोणितं पिब पिब" का जप करके क्या वह मुझे मार डालेगा? इस पर आपको यक़ीन है?

"सोलहों आने विश्वास है। मारण, स्तम्भन, उच्चाटन—यह सब तन्त्रशास्त्र में लिखा है भाई। ऋषि-मुनि क्या सब झूठ लिख गये हैं?"

"आपने पढ़ा है?"

"हाँ, थोड़ा-बहुत पढ़ा है। सुना है कि वैसा ही हो जाता है। ग्यारह रात तक वैसा प्रयोग करने से आदमी बीमार हो जाता है—और ठीक इक्कीसवें दिन मृत्यु हो जाती है। नहीं जी नहीं—वह पागलपन छोड़ दो। और तुम मुँह से तो कहते हो कि विश्वास नहीं है, किन्तु छाती पर हाथ रखकर तो कहो, तुम दिल से डरते नहीं हो!"

सुरेन्द्र ने तनिक हँसकर कहा—सीने पर हाथ रखकर ही कहता हूँ, मुझे तनिक भी डर नहीं।

"तो फिर चेहरा क्यों सूख गया है? हाथ से माथा पकड़े सोच काहे का कर रहे हो?"

तनिक विषाद की हँसी हँसकर सुरेन्द्र ने कहा—बतलाऊँ, क्या सोच रहा हूँ? मैं सोच रहा हूँ कि जो मुझसे बड़े हैं—मेरे और जिनके शरीर का रक्त, मांस, हाड़ तक एक ही पिता से प्राप्त है, जिन्होंने बचपन से मेरा बहुत-बहुत दुलार किया है, स्नेह किया है, ख़ुद न खाकर अपनी थाली में से

मुझे खिला दिया है—वे इतने निठुर हो गये हैं कि मेरी जान लेने को उतारू हैं! यही सोचकर मैं दुखी हो रहा हूँ। बङ्कु दादा! डर के मारे मेरी सूरत नहीं बिगड़ रही है।

इस बातचीत में रात के नव बज गये। नौकरनी ने ख़बर दी—रसोई तैयार है।

आज चित्त ठिकाने न था। इसलिए सुरेन्द्र भीतर सोने को नहीं गया कि कहीं श्यामा को शक न हो जाय और भेद लेने के लिए वह ज़िद कर बैठे। बाहर के कमरे में जहाँ बङ्कु बाबू के लिए बिछौना बिछाया गया था वहीं दूसरे बिस्तरे पर वह भी लेट गया।

बिस्तर पर पड़े-पड़े साले-बहनोई के बीच देर तक बात-चीत होती रही,—किन्तु निर्णय कुछ भी न हुआ। बङ्कु बाबू कहने लगे—तुम्हें विश्वास हो या न हो, मुझे तो पूरा-पूरा विश्वास है। मेरे मन का खटका दूर करने के लिए, उत्कण्ठा हटाने के लिए, तुम्हें मेरी सलाह सुननी और माननी चाहिए।

इसे सुरेन्द्र अस्वीकार न कर सका; कहा—अच्छा, कल एक न एक उपाय करने का निश्चय कर लिया जायगा।

सवेरा होने से बहुत पहले सुरेन्द्र की आँख खुल गई। बिस्तरे पर पड़ा-पड़ा वह मन में इन्हीं सब बातों पर ग़ौर करने लगा। कोई आध घण्टा इसी तरह बीता। एकाएक बिस्तरे पर बैठकर उसने पुकारा—बङ्कु दादा,—ओ बङ्कु दादा!

पुकारने से बङ्कु बाबू जाग पड़े। सुरेन्द्र ने कहा—अब विन्ध्याचल जाने की ही पक्की रही।

सुनते ही प्रसन्न होकर बङ्कुविहारी उठ बैठे। कहने लगे—ठीक है! तो फिर आज शाम की गाड़ी से चलो। देरी करना व्यर्थ है।

सुरेन्द्र ने कहा—लेकिन मैं किसी के हाथ-पैर जोड़ने का नहीं। मैंने एक हिकमत सोची है।

"वह क्या?"

सुरेन्द्र ने हँसकर कहा—यहाँ न बताऊँगा। विन्ध्याचल में ही सुन लेना।

७

डाकगाड़ी विन्ध्याचल में नहीं ठहरती, इससे मिर्ज़ापुर में उतरने की सलाह पक्की हुई। मिर्ज़ापुर से विन्ध्याचल कुल ढाई कोस है। एक्का, घोड़ा-गाड़ी का घण्टे भर का रास्ता है।

दूसरे दिन साढ़े दस बजे गाड़ी मिर्ज़ापुर पहुँच गई। पास ही धर्मशाला है। वहाँ जाकर नहाने-धोने, खाने-पीने से छुट्टी पाकर तीन बजे विन्ध्याचल जाना तय हुआ।

धर्मशाला में दोमञ्ज़िले के दो अच्छे कमरे मिल गये। वहीं पर सामान रखकर और स्त्रियों को ठहराकर रसोई-पानी का प्रबन्ध किया। सुरेन्द्र के साथ बङ्कु बाबू गङ्गा नहाने चल दिये।

स्नान करते-करते बड़ू बाबू ने पूछा—अच्छा अब बत-लाओ, कौन सी हिकमत सोची है।

"काम सिद्ध हो जाने दीजिए, फिर सुन लीजिएगा।"

"काम हो जाने पर सुनूँगा!—प्रत्यक्ष देख ही न लूँगा!"

"नहीं दादा,—वहाँ आपका जाना न होगा।"

"मैं न जाऊँगा!—क्यों भला?"

"मैंने जो हिकमत सोची है वह, आप साथ रहेंगे तो, कारगर न होगी।"

बड़ू बाबू ने तनिक सहमकर कहा—हिकमत? उनके साथ भला तुम कौन सी हिकमत करोगे? नहीं, नहीं,—हिकमत करने की ज़रूरत नहीं। वे हैं सिद्ध पुरुष, कहीं हिकमत करने जाकर उलटे आफ़त में न फँसना पड़े।

सुरेन्द्र ने हँसकर कहा—आप जो कहते हैं वही यदि सच हो तो फिर उससे अधिक विपत्ति और क्या होगी? मरने से बढ़कर तो गाली होती नहीं। आप बिलकुल बेफ़िक्र रहें—काम सोलहों आने फ़तह कर लाऊँगा।

बड़ू ने कहा—जो ठीक समझो, करो—लेकिन सावधान! कोई झमेला न खड़ा कर लेना। मुझे साथ चलने नहीं देते हो, तो फिर मैं धर्मशाला में ही रहूँ?

"नहीं, आप भी हम लोगों के साथ-साथ चलिए। विन्ध्याचल के बाज़ार में उतरकर आप भाई साहब के डेरे पर चले जाइएगा। काम करके हम लोग वहीं आ जायँगे।

श्यामा और भाभी को मैं अष्टभुजा के दर्शन कराने ले जाऊँगा। शाम तक भाई साहब के डेरे पर लौटूँगा।"

बङ्कु बाबू ने मुँह बनाकर कहा—मैं तो तुम्हारे भाई के डेरे पर जाने का नहीं।

"क्यों भला?"

"भला यह भी पूछने की बात है? जो व्यक्ति अपने भाई की जान लेने को तैयार है—उस ख़ूनी के साथ बैठकर मैं मीठी-मीठी बातें करूँगा? यह मुझसे किसी तरह नहीं हो सकता।"

इन बातों से सुरेन्द्र का चेहरा लज्जा और दुःख के मारे फीका पड़ गया। उसने उदास होकर कहा—अच्छा तो फिर आप उस 'हिन्दू-निवास' में ही जाकर ठहरिएगा। भाई साहब से मुलाक़ात करके शाम को मैं आपके पास पहुँचूँगा।

खा-पी करके बङ्कु बाबू किराये की गाड़ी लाने गये, इधर सुरेन्द्रनाथ ने एक नये ढङ्ग की पोशाक पहनना आरम्भ किया। ढीला-ढाला कुर्ता उतारकर टवील की टेनिस शर्ट पहनी और उस पर खुले हुए गले का अँगरेज़ी कोट पहन लिया। कोट के बुक-पाकेट में एक पेंसिल-लगी पाकेटबुक रख ली। माथे में बाईं ओर को सब लोग जैसी जुल्फें सँवारते हैं उसे बिगाड़कर ठीक बीचोंबीच से इस तरह बालों को सँवारा कि माँग सी निकल आई—ब्रश की सहायता से माँग के दोनों ओर बाल इस प्रकार ऊँचे-ऊँचे कर लिये मानो

साँग हों। पम्प-शू उतारकर सूती जुराबों पर लाल-ग्रन्द हाथी-कान का बूट पहना। कार-समेत सुनहरे फ्रेमवाला "पाँस-ने" चशमा उतारकर बैग में रख दिया। एक अध-मैला रेशमी चदरा निकालकर कन्धे पर रख लिया। आज सुरेन्द्र इसी लिबास में जायगा।

बङ्कु बाबू लौटकर आये तो सुरेन्द्र की सूरत देखते ही चकरा गये। कहने लगे—यह कैसा पहनावा है? खुले गले का कोट, यह शर्ट और यह बूट तुम्हें मिला कहाँ? तुमको यह सब पहनते तो कभी देखा नहीं।

"सोच-विचारकर संग्रह कर लाया हूँ। आज मैं वह सुरेन्द्र नहीं हूँ। बतलाइए, आज मैं कौन हूँ?"

"कौन हो?"

सुरेन्द्र ने साले के कान में कहा—पाट का दलाल।

बङ्कु बाबू ने भौंहें सिकोड़कर कहा—समझ में नहीं आता कि तुम्हारा मतलब क्या है। देखो भाई, सावधान रहना; चालाकी करने जाते तो हो कहीं साधु शाप-वाप न दे दे।

गाड़ी आ गई थी। धर्मशाला के नौकरों को बख़्शीश देकर और गाड़ी पर असबाब लदवाकर ये लोग विन्ध्याचल को रवाना हुए। सुरेन्द्र ने बहुत-बहुत कहा किन्तु बङ्कु बाबू गाड़ी के भीतर न बैठे—कोचबाक्स पर कोचमैन के साथ जा बैठे। धूप से बचने के लिए छतरी खोल ली।

जैसी सलाह हो चुकी थी उसके अनुसार बङ्कू बाबू तो विन्ध्याचल के बाज़ार में उतर गये और गाड़ी अष्टभुजा की ओर बढ़ी।

सब लोग अष्टभुजा पहाड़ के नीचे पहुँच गये। बङ्कू बाबू ने अच्छी तरह शिनाख़्त बतला दी थी, इससे सुरेन्द्रनाथ ने साधु बाबा के आश्रम को सहज ही पहचान लिया। इन लोगों ने पहाड़ पर चढ़कर पहले अष्टभुजा देवी के दर्शन किये। मन्दिर क्या है, पहाड़ में खुदी हुई एक गुफा समझिए। मूर्त्ति के दाहने भाग में गुफा के एक स्थान से एक सुरङ्ग चली गई है—मालूम नहीं, कहाँ को गई है। भीतर भयानक अँधेरा है। दिया जलाकर पुजारी सुरङ्ग के दरवाज़े पर ले गया—थोड़े से हिस्से में उजाला हुआ सही किन्तु अन्धकार का तो सोलहों आने राज्य था। देखकर श्यामारानी डरने लगी।

दर्शन हो चुकने पर सीढ़ियाँ तय करके पहाड़ से उतरते-उतरते सुरेन्द्र ने कहा—भौजी, वह देखो नीचे अमराई के बीच में एक मरातिब पक्का मकान है। सुना है, वह साधु का आश्रम है। बाबाजी सिद्धपुरुष माने जाते हैं—बड़े प्रतापी हैं। दर्शन करने चलोगी ?

भावज ने प्रसन्न होकर कहा—ज़रूर।

कुछ सीढ़ियाँ तय कर चुकने पर सुरेन्द्र ने कहा—भौजी, दर्शन करोगी तो कुछ भेंट भी तो देनी होगी।

"हाँ हाँ। कहीं खाली हाथ दर्शन किया जाता है!"

सुरेन्द्र ने पाकेट से दस रुपये निकालकर भावज के हाथ में देकर कहा—ये लो; दोनों जनी पाँच-पाँच रुपये भेंट चढ़ा देना।

बाबाजी के आश्रम से तनिक हटकर सुरेन्द्र की किराये की गाड़ी भी राह देख रही थी। पहाड़ से नीचे उतरकर गाड़ीवान को हाथ से आश्रम की ओर आने का इशारा करके सुरेन्द्रनाथ आगे बढ़ा। दूर से देखा, आश्रम के बरामदे में खूब मोटे-ताज़े जटाजूटधारी कोई बैठे हुए हैं। एक सेवक उन्हें पंखे से हवा कर रहा है। तनिक अन्तर पर तीन-चार हिन्दुस्तानी 'भगत' हाथ जोड़े बैठे हैं। सुरेन्द्र ने कहा—वही बाबाजी जान पड़ते हैं। वहाँ तो और भी आदमी बैठे हैं। चलो, दोनों जनी दर्शन करके यहाँ गाड़ी में आ जाओ। फिर मैं उनके पास बैठकर तनिक बातचीत करूँगा।

कुमुदिनी—तब तो हम (देवरानी-जेठानी) कुछ भी न सुन पावेंगी।

"क्यों न सुन पाओगी? गाड़ी इधर ही तो आ रही है। आश्रम के पास ही गाड़ी खड़ी रहेगी। खड़खड़ी खोलकर आराम से देखना, सुनना।"

समीप पहुँचकर भौजाई ने धीरे से कहा—बाबाजी से पूछना, श्यामा के बाल-बच्चा कब तक होगा।

इनको साथ लिये सुरेन्द्र आगे बढ़ा। देखा, बाघम्बर पर विराजे बाबाजी नक्काशीदार पीतल के गिलास से भङ्ग पी रहे हैं।

इन लोगों की ओर बाबाजी टकटकी लगाकर देखने लगे। ता
लिया कि यात्री ग़रीब नहीं—मालदार जान पड़ते हैं।

बरामदे के समीप आकर सुरेन्द्र झुककर देर तक जूते
का फीता खोलता रहा। जूता उतारकर भावज और पत्नी
के साथ वह धीरे-धीरे बरामदे में पहुँचा।

बाबाजी ने भारी आवाज़ में कहा—"आओ।" हिन्दु-
स्तानी 'भगत' लोग अदब से हटकर दूर जा बैठे। धीरे-
धीरे पास जाकर पहले कुमुदिनी ने और फिर श्यामा ने भेंट
चढ़ाकर प्रणाम किया। फिर सुरेन्द्र ने कपट-भक्ति से माथा
टेककर पैरों के पास चमकती हुई गिनी रख दी।

बाबाजी ने कहा—जय हो। माँ अष्टभुजा तुम्हारा भला
करें। बैठो। अरे खुड़खुड़वा, दरी-वरी तो ले आ।

सुरेन्द्र ने कहा—बाबाजी, यह हमारी गाड़ी तो खड़ी है,
इन्हें उसी में बिठाये आता हूँ।

तनिक उदासी के साथ बाबाजी ने कहा—अच्छा।

दोनों को गाड़ी में बिठाकर सुरेन्द्र लौट आया। इधर
नौकर ने बाबाजी के सामने शतरञ्जी बिछा दी थी—उसी पर
सुरेन्द्र बैठ गया। उसने बगलाभगत की तरह हाथ जोड़कर
धीरे-धीरे कहा—जैसा सुना था वैसा ही पाया। बाबाजी
के दर्शन करके मैं तो निहाल हो गया।

बाबाजी ने मुसकुराकर एक बार दूर बैठे उन हिन्दुस्तानी
भगतों की ओर देखा। मतलब यह कि "सुन लिया न

तुम लोगों ने ? मिल न गया तुम्हें इसका पक्का सबूत कि देश-विदेश में मेरा कैसा क्या नाम है ?" तुरन्त ही सुरेन्द्र की ओर देखकर कहा—तुम लोगों का घर कहाँ है ?

सुरेन्द्र ने सावधानी से धीमे स्वर में इस ढङ्ग से उत्तर दिया जिसमें भावज न सुन सकें—महाराज, कलकत्ते में।

"अच्छा, आपका नाम ?"

सुरेन्द्र ने अपना असली नाम ही बतला दिया—इस ढङ्ग से कि गाड़ी में भावज को सुन पड़े।

"घर पर क्या रोज़गार होता है ?"

धीमे स्वर में उत्तर दिया—महाराज, पाट की दलाली करता हूँ।

"कितने भाई हो ?"

"मुझ समेत पाँच। बड़ा मैं ही हूँ।"—यह भी पहले की भाँति धीमे स्वर में कहा।

"साथ में ये स्त्रियाँ कौन हैं ?"

"एक मेरी स्त्री है" (तनिक ज़ोर से)—"दूसरी मेरी स्त्री की बहन।" (यह बहुत ही धीमे स्वर में)

"अच्छा। यहाँ कितने दिन ठहरने का विचार है ?"

आरम्भ धीमे स्वर में किया; क्रमशः स्वर को ऊँचा करके सुरेन्द्र कहने लगा—कल यहाँ से इलाहाबाद जाऊँगा। इस साल हमारा पाट का बाज़ार बहुत मन्दा है, इसी से सोचा कि एक बार तीर्थ-यात्रा ही कर आऊँ। और साल होता

तो इन दिनों पूर्वी बङ्गाल की नदियों में नाव की सवारी ह
पाट मोल लेता घूमता होता। रास्ते में आते समय दानापु
मे एक आदमी से बाबाजी की महिमा का हाल सुना। तभ
से बाबाजी के दर्शनों की बड़ी लालसा लगी है। आपकी दय
से वह पूरी भी हो गई। नहीं तो सीधा इलाहाबाद ही जाता
था। कुछ-कुछ आपकी करामातों का हाल सुना है—
आपके मुँह से जो निकल जाता है वही सच हो जाता है!

बाबा ने हँसकर कहा—नहीं जी, यह कुछ नहीं है। मुझसे तारा माता जो कराती हैं वही करता हूँ। जो कुछ वे कहला देती हैं, कह देता हूँ।

"सुना है, हाथ देखकर बाबाजी जिसे जो बतला देते हैं वह रत्ती-रत्ती सच निकलता है।"

"तारा माता कहला देती हैं—तारा माता कहला देती हैं। भला मुझमें क्या सामर्थ्य है! दिखलाओ तो अपना हाथ।"

सुरेन्द्र ने दाहना हाथ फैला दिया; बाबाजी ने उलट-पलटकर हाथ देखकर कहा—धनस्थान, पुत्रस्थान, पुण्यस्थान अत्यन्त शुभ है। पुण्यस्थान की भला क्या कहना है! तुम भाग्यवान् पुरुष हो, धर्म में मन लगाये रहना।

"मेरे कितने बेटो-बेटे होंगे बाबाजी?"

हाथ की तनिक जाँच करके साधु ने कहा—ठीक उत्तर तो तब दिया जाय जब तुम्हारी स्त्री का भी हाथ देख लूँ।

"अच्छा उसे बुलाता हूँ" कहकर सुरेन्द्र गाड़ी के पास पहुँचा। उसने भावज को बाबा की बात की सूचना दी।

"जाओ श्यामा, हाथ दिखला आओ।"

श्यामा ने कुमुदिनी से लिपटकर कहा—माई री, मैं न जाऊँगी। मुझे बड़ा डर लगता है।

"भला इसमें डर किस बात का? शेर या तेंदुआ तो है नहीं, जो खा लेगा। जाओ, दिखला आओ।"

"नहीं दीदी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मैं न जाऊँगी।"

लाचार होकर सुरेन्द्र लौट गया। बाबाजी से कहा—महाराज, वह डर के मारे नहीं आती।

बाबाजी ने हँसकर तिबारा सुरेन्द्र का हाथ पकड़ा; कहा—परमायु स्थान भी बुरा नहीं है।

ज़ोर से पूछा—मैं कब तक जीता रहूँगा?

"चौहत्तर—साढ़े चौहत्तर वर्ष तक। किन्तु भैया, कोई वर्ष भर के बाद बड़ी भारी अलफ देख पड़ती है।"

सुरेन्द्र ने मानों चौंककर पूछा—बाबाजी, कैसी अलफ है? कब होगी?

"अगले भादों में। पानी से डर है।"

"तब तो सब चौपट हुआ। जल से डर! मैंने समझ लिया! नाव की सवारी से पूर्वी बङ्गाल में कहीं पाट मोल लेने जाते समय—शायद—"

बाबाजी ने गम्भीर होकर कहा—नाव उलट जायगी।

डर से काँपते हुए स्वर में सुरेन्द्र ने कहा—सब चौपट हो गया! बाबाजी, भला इसका कुछ उपाय भी है?

"हवन कराना होगा।"

"हवन?—अच्छी बात है। तो कब कराना चाहिए?"

"जितना जल्दी हो सके उतना ही अच्छा। देरी होने से हानि है।"

सिर में हाथ लगाकर सुरेन्द्र सोचने लगा। अन्त मे बोला—यह बात है!

बाबाजी ने धैर्य देने के स्वर में कहा—उसके लिए इतनी चिन्ता क्यों करते हो? यह काम कर देनेवाला तुम्हारी पहचान का यदि कोई अच्छा आदमी न हो तो फिर मैं ही कर दूँगा। किन्तु छः महीने लगेंगे।

सुरेन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा—तब तो बाबाजी को कोई महीने भर के बाद कलकत्ते में दास के घर को अपनी चरण-रज से पवित्र करना पड़ेगा।

बाबाजी ने हँसकर कहा—दो-चार दिन का काम तो है नहीं बच्चा, पूरे छः महीने लगेंगे। इस आश्रम को छोड़कर भला मैं दूसरी जगह छः महीने रह सकता हूँ! जो मैं दूसरी जगह चला जाऊँ तो भक्त लोग न मर जायँ! तुम घर पहुँचकर वहाँ से मेरे पास रुपये भेज देना—मैं यहीं से हवन कर दूँगा।

"अच्छी बात है। यह भी बुरा नहीं। जो आप इतनी दया कर देंगे तो मेरा बड़ा उपकार होगा। भला इसमें कितना ख़र्च पड़ेगा ?"

"पहले तो काम का आरम्भ करने को कम से कम सौ रुपये चाहिए। फिर जैसी ज़रूरत होगी, मैं तुमको सूचना दूँगा।"

"तो कुल कितना ख़र्च लगेगा ?"

मन में हिसाब लगाकर बाबाजी ने कहा—कोई साढ़े तीन सौ रुपये समझ लो। लगातार छः महीने तक हवन किया जायगा कि नहीं। हर अमावस को होम होगा। एक रात को मन भर घी स्वाहा हो जायगा। छः मन गाय के घी का दाम समझ लो छः पचासं तीन सौ रुपये। इस तरफ़ घी तनिक सस्ता है।—ऊपर के ख़र्च के लिए पचास रुपये और रख लो।

"अच्छी बात है बाबाजी। अब मैं इलाहाबाद में बहुत देर न करूँगा। घर पहुँचकर कोई हफ़्ते भर में आपके पास सौ रुपये का मनीआर्डर भेज दूँगा। आपको ऐसी दया करनी होगी जिससे मेरा इस विपत्ति से छुटकारा हो जाय।"—अब सुरेन्द्र ने गिड़गिड़ाकर बाबाजी के पैर पकड़ लिये।

"कोई शङ्का मत करो। मैं तुमको अभय देता हूँ।"

"तो बाबाजी, कृपा करके अपना पता-ठिकाना लिख दीजिए; उसी पते पर मनीआर्डर भेज दूँगा।"

"बहुत अच्छा।"—अरे खुड़खुड़, क़लमदान और कागज़ तो ले आ।

खुड़खुड़वा कागज़-क़लम ले आया। बाबाजी लिखने को ही थे कि सुरेन्द्र ने कहा—महाराज, एक अर्ज़ है।

"कहो।"

"मेरा हाथ देखकर आपने जो कुछ फल कहा है वह सबका सब यदि आप कृपा कर अपने हाथ से लिख दें तो मुझे याद रखने में बड़ा सुभीता हो। लिख करके उसी के नीचे अपना नाम-धाम, पता, तारीख़ वग़ैरह भी लिख दीजिए—एक कागज़ से एक साथ दो काम हो जायँगे।"

"तो फलाफल भी लिख दूँ? बहुत अच्छा। संस्कृत में लिखूँ या भाषा में?"

"महाराज, मैं मूर्ख आदमी भला संस्कृत का मतलब क्या समझूँगा? दया करके भाषा में ही लिख दीजिए।"

कागज़ पर बाबाजी थोड़ी देर तक कुछ लिखते रहे। फिर उसे सावधानी से एक बार दुहराकर सुरेन्द्रनाथ को दे दिया। सुरेन्द्र ने मन ही मन पढ़ा—

"श्रीमान् सुरेन्द्रनाथ दत्तस्य जन्मपत्री विचार फलमेतत् लिख्यते। धनस्थान, पुत्रस्थान, पुण्यस्थान अतीव शुभ। परमायु पचहत्तर वर्ष, पाँच मास, द्वाविंशति दिवस। आगामी सौर वर्षस्य भाद्रे मासि श्रीमान् को एक भयङ्कर अलफ देख पड़ती है। जल-मार्ग में नाव की सवारी से विपत्ति की सम्भा-

बना है किन्तु यथाविधि होम-हवन आदि का अनुष्ठान करा देने से सङ्कट टल जायगा।

लिखितं श्रीकालिकानन्द ब्रह्मचारी—

मोकाम विन्ध्याचल, अष्टभुजा पहाड़ के नीचे कालिकाश्रम।

१६ वीं आश्विन।"

हाथ में काग़ज़ लेकर सुरेन्द्र ने बाबाजी को दण्डवत् करके अपना रास्ता पकड़ा।

६

भावज और स्त्री के साथ जब सुरेन्द्र विन्ध्याचल में अपने भाई के डेरे पर पहुँचा तब दिन डूब गया था। बैठक में देखा बंकु बाबू बैठे हैं।

यहाँ उनको देखकर सुरेन्द्र तनिक चकराया। उसने पूछा—यहाँ आप कितनी देर से हैं? भाई साहब कहाँ हैं?

बङ्कु बाबू—तुम्हारे भाई तो मन्दिर में आरती देखने गये हैं। औरतों को भीतर घर में पहुँचा आओ।

घर के भीतर से सुरेन्द्र के लौट आने पर बंकुविहारी ने पूछा—कहो, क्या ख़बर है?

सुरेन्द्र ने हँसते-हँसते कहा—काम फ़तह हो गया,—मैदान साफ़ है।

"किस तरह?"

"यही बात थी न कि ग्यारह दिन तक मारण का पुरश्चरण होने पर मैं बीमार हो जाऊँगा और इक्कीस दिन के बाद मर जाऊँगा ?"

बङ्कू बाबू ने उकताकर कहा—हाँ जी, बतलाओ क्या हुआ ?

"यह देख लीजिए बाबाजी की दस्तख़ती ज़बानबन्दी—मेरी परमायु तो पूरे साढ़े चौहत्तर वर्ष की है। माना कि एक मलफ है, सो अभी उसके लिए ग्यारह-बारह महीने की देर है। देख लीजिए, बाबाजी के दस्तख़त हैं और आज की ही तारीख़ है। अभी तक स्याही गीली है। यह काग़ज़ जाली नहीं है, इसकी गवाह भावज हैं।" सुरेन्द्र ने हँसते-हँसते बङ्कू बाबू के हाथ में काग़ज़ दे दिया।

पुर्ज़े को लेकर बङ्कू बाबू लहमे भर तक सन्नाटे में बने रहे; फिर लम्बी, ठण्डी साँस लेकर बोले—चलो, पिण्ड छूटा।

अब सुरेन्द्र ने घटना का आद्योपान्त पूरा विवरण सुनाकर पूछा—बंकू दादा, अब आपको विश्वास हुआ कि नहीं कि यह आदमी पूरा ठग है ?

बंकू बाबू ने गम्भीर भाव से सिर हिलाकर असम्मति जतला दी।

सुरेन्द्र ने अचरज करके कहा—अयँ ! इतने पर भी आपका विश्वास उस पर से नहीं हटा ! भला आप इससे बढ़कर और कौन सा प्रमाण चाहते हैं ?

बंकु बाबू—इससे तो यही सिद्ध होता है कि तुम्हारे भाई साहब जो मारण-यज्ञ करा रहे थे वह बीच में ही बन्द हो जायगा—पूर्ण न होगा ; पूर्णाहुति अग्नि में नहीं पड़ेगी।

इसका कुछ उत्तर सुरेन्द्र तुरन्त न दे सका। कोई आध मिनट तक चुप रहकर उसने कहा—बंकु दादा, आखिर आपने हार न मानी। आपका सीधापन सराहने योग्य है। छोड़िए इस चर्चा को। अच्छा, हम लोगों के आने की खबर पाकर भाई साहब ने क्या कहा?

"तुम्हारे भाई साहब से तो मेरी भेंट ही नहीं हुई। मुझे यहाँ आये कोई आध घण्टा हुआ है। आने पर खबर मिली कि तुम्हारे भाई घर पर नहीं हैं। गाड़ी से उतरकर मैं 'हिन्दू-स्वास्थ्य-निवास' में ही गया था। वहाँ बैठकर मैं जितना ही इन बातों पर ग़ौर करने लगा उतना ही क्रोध बढ़ने लगा। सोचा—इस तरह बेलाग रहना ठीक नहीं,—जाऊँ, चन्द्रनाथ को दो-चार उलटी-सीधी सुनाकर जी की जलन मिटा आऊँ। अच्छा हुआ। अब यह पुर्ज़ा उसकी नाक पर रखकर मुझे जो कहना है सो कहूँगा और चला जाऊँगा।"

सुरेन्द्र ने घबराकर कहा—नहीं साहब, यह कुछ न कीजिए; मैं यह न होने दूँगा।

बङ्कुविहारी ने कड़े स्वर में कहा—क्यों? क्यों न होने दोगे?

"भाई साहब झेंप जायँगे।"

"झेंप जायँगे !—बेशर्म को भी झेंप होती है ?"

सुरेन्द्र ने मुसकुराकर कहा—नहीं, नहीं, यह न होगा।

बङ्कु बाबू चिढ़कर बोले—यही तो तुम में दोष है। उन्होंने तुम्हारे साथ जैसा व्यवहार किया है उसके हिसाब से उन्हे झेंपाने से कहीं बढ़कर दण्ड मिलना चाहिए; तभी तो उनको नसीहत मिलेगी ! तुम मत कहना, मैं कहूँगा।

सुरेन्द्रनाथ ने कहा—मैं आपके पैर पड़ता हूँ,—यह किसी तरह न होने दूँगा। मैं हूँ उनका छोटा भाई—सो क्या मैं उन्हें शर्मिन्दा करूँगा ?—उन्हें दुख दूँगा ? क्या यह मुझे करना चाहिए ? मैं तो कुछ मानता-वानता नहीं—मुझे नास्तिक तक कह सकते हो। किन्तु आप तो हिन्दू हैं, आप ही बतलाइए—यदि मैं उन्हें लज्जित अपमानित करूँ तो इसमें क्या मुझे दोष न लगेगा ?

बङ्कुविहारी ने बिगड़कर कहा—उन्होंने तुम्हारे साथ सोलहों आने धर्मसङ्गत व्यवहार किया है न !

अब सुरेन्द्र ने तनिक अधीर होकर कहा—आप कहते क्या हैं ! मेरी बात का क्या यही उत्तर है ?

बङ्कुविहारी थोड़ी देर तक चुपचाप मुँह फुलाये कुछ सोचते रहे। अन्त में उन्होंने कहा—तो यह कहो कि तुम उन्हें इस काम की सूचना नहीं देना चाहते ? मारण-यज्ञ जिस प्रकार हो रहा है—उसी प्रकार होता रहेगा। क्यों न ?

"नहीं, यह न होगा। सिर्फ़ उनका भ्रम दूर करने के लिए मैं उनको यह काग़ज़ दिखा दूँगा। इस काग़ज़ को देखते ही वे समझ जायँगे कि जिसकी उम्र साढ़े पचहत्तर वर्ष की है वह इसी दम मरेगा किस तरह! काग़ज़ उनको दिखा दूँगा सही लेकिन इस बात का पता किसी तरह न लगने दूँगा कि मुझे मारण-यज्ञ का सब हाल मालूम हो गया है। इस काग़ज़ को देखते ही भाई साहब समझ लेंगे कि ब्रह्मचारी असल में परले सिरे का ठग है—तब, शायद यज्ञ के पूर्ण कराने का उन्हें आग्रह न रहेगा।

बंकुविहारी ने उठना चाहा। सुरेन्द्र ने कहा—कहाँ जाइएगा?—यहीं रहिए, भोजन कीजिए।

"नहीं भैया, मैं न ठहरूँगा। तुम्हारी तरह मुझमें आत्म-संयम नहीं है—तुम्हारे भाई पर नज़र पड़ते ही मेरी ज़ुबान से न-जाने क्या निकल जाय! इससे तुमको बुरा लगेगा।"

यह सुनकर फिर सुरेन्द्र ने उन्हें रोका नहीं। कहा—कल सबेरे मैं आपसे 'स्वास्थ्यनिवास' में भेंट करूँगा।

रात को आठ बजे चन्द्रनाथ बाबू अपने डेरे पर लौटे। इन लोगों को देखने से उन्हें अपार अचरज हुआ। अपनी पुरानी करतूतों का ख़याल करके वे लाज के मारे सिकुड़ गये।

यह सुरेन्द्र ने भाँप लिया। इसलिए उसने इस ढँग से बातचीत छेड़ दी कि मानो कभी किसी तरह का मनमुटाव

हुआ ही नहीं;—दोनों भाइयों के बीच वही पुराना स्नेह-बन्धन एक सा दृढ़ बना हुआ है।

इससे सुरेन्द्र की भावज को बड़ा सन्तोष हुआ। अब तक बेचारी को बड़ी चिन्ता थी।

अब, इतनी देर में, जो रसोई-पानी का प्रबन्ध किया जाय तो आधी रात से पहले भोजन न मिलेगा। इसलिए चन्द्रनाथ ने नौकर को बाज़ार भेज दिया। वह दूकान मे बैठकर अपने सामने बढ़िया पूरी-कचौरी सिकवा लेगा और तरह-तरह के अचार, थोड़ी सी मिठाई तथा सेर भर रबड़ी ले आवेगा।

पति और देवर के पास बैठकर कुमुदिनी बातचीत करने लगीं। देश की चर्चा, रास्ते का हाल-हवाल, अष्टभुजा के दर्शन का क़िस्सा—अन्त में बाबाजी के आश्रम में देर हो जाने का ज़िक्र करके उन्होंने एकाएक पूछा—हाँ देवर, बाबाजी ने तुम्हें काग़ज़ में क्या-क्या लिख दिया है? तुमने कहा था कि डेरे पर चलकर दिखला देंगे—सो दिखलाया क्यों नहीं?

बाबाजी की चर्चा छिड़ते ही चन्द्रनाथ का रङ्ग बदल गया। स्त्री की पिछली बात से उनका जी और भी बेचैन हो उठा।

सुरेन्द्र ने कहा—उसको देखने से क्या होगा?—उसके देखने की कोई ज़रूरत नहीं।

मामला दबाया जा रहा है, यह देखकर कुमुदिनी का कौतूहल और भी बढ़ने लगा। अब वे दबाव

डालने लगीं। तब सुरेन्द्र ने बड़ी अनिच्छा से वह काग़ज़ पाकेट से निकालकर उन्हें दे दिया।

चन्द्रनाथ बाबू ने "देखें-देखें" कहकर स्त्री के हाथ से काग़ज़ ले लिया। चुपचाप पढ़कर उन्होंने भी छिपाकर आराम से साँस ली।

किन्तु पुर्ज़े को पढ़कर कुमुदिनी बहुत ही घबराकर बोलीं—अरे राम! यह तो बड़े सङ्कट की बात हुई।—इसका उपाय क्या है?

सुरेन्द्र—देख न लो—इसी से तो मैं छिपाता था, तुम्हें दिखलाता न था। भौजी, इस पर विश्वास मत करो। शायद वह बाबाजी कोई ठग हो—मैं तो इन सब पर विश्वास नहीं करता।

कुमुदिनी—सो तो जानती हूँ, तुम कुछ नहीं मानते। घोर नास्तिक हो। अहा! बाबाजी का कैसा तेजस्वी चेहरा है!—देखते ही मुझे तो उनपर भक्ति हो गई। नहीं, नहीं—इसका कुछ उपाय करना ही होगा। न होगा तो कल सबेरे हम सब फिर उनके आश्रम में चलेंगे। देखा जायगा कि इस सङ्कट से बचने के लिए किस प्रकार का होम और पूजा-पाठ करने को कहते हैं। हाँ जी, तुम क्या कहते हो?

साथ ही साथ सुरेन्द्र ने भी पूछा—भाई साहब, आपने इस कालिकानन्द को देखा है?

चन्द्रनाथ ने नीची निगाह करके धीमे स्वर में उत्तर दिया—नहीं तो। हाँ—हाँ—लोगों से बहुत—सुना तो है—शायद।

"लोग कहते क्या हैं ? सच्चा साधु है या ठग ?"

चन्द्रनाथ ने पान की पीक लीलकर कहा—सभी तो—कहते हैं—छटा हुआ ठग है।

अब सुरेन्द्रनाथ बड़ी उमङ्ग से कहने लगा—सुन लिया न भौजी! मैंने तो उसे देखते ही समझ लिया था कि पक्का ठग है। कौन जाने, तुम सबको इतनी आसानी से क्योंकर विश्वास हो जाता है! औरतों का तो स्वभाव है कि जहाँ गेरुवा कपड़ेवाले जटाधारी भस्म रमाये हुए किसी को देखा कि भक्ति-रस में ग़ोते खाने लगीं—बिना सोचे-समझे उसी को इस युग का प्रधान अवतार समझ लिया।

साधु के प्रति उपजे हुए विश्वास को भौजाई के मन से उड़ा देने के लिए सुरेन्द्र ज़ोर से हँसने लगा।

उस हँसी में शामिल होने की चन्द्रनाथ बाबू ने बहुत-बहुत कोशिश की किन्तु पूरी सफलता प्राप्त न हुई।

देश को जाने से पहले प्रयाग और मथुरा-वृन्दावन की यात्रा कर आने की सलाह ठहरी। बहुत-बहुत मनाये जाने पर भी बंकुविहारी इन लोगों के साथ तीर्थ-यात्रा के लिए नहीं गये।

विपद्बन्धु

गिरौ मयूरा गगने पयोदा लक्षान्तरेऽर्कश्च जलेषु पद्मम् ।
इन्दुर्द्विलक्षं कुमुदस्य बन्धुर्यो यस्य मित्रं न हि तस्य दूरम् ॥

१

प्रयाग के विख्यात दवा-फ़रोश रामचन्द्र कक्कड़ का पुत्र कुमुदनाथ आज लन्दन नगरी में बहुत ही विपन्न है।

पिता की जीवितावस्था में ही भेषज-रसायन का अध्ययन करने के लिए कुमुद विलायत गया था। मालदार पिता का इकलौता बेटा जब जितना रुपया माँगता, पिता उतना ही भेज देते थे। अन्यान्य छात्रों की अपेक्षा कुमुद का मासिक खर्च भी अधिक होता था। अब उसमें और भी वृद्धि हो गई थी। पिता को मरे पूरे दो वर्ष हो गये। फूफाजी और दूकान के मैनेजर साहब दूकान का काम-काज करते हैं। मैनेजर ने जब से काम सँभाला है तब से कुमुद के पास काफ़ी रुपये नहीं रहते। फिर भी हर महीने नियमित रुपये चले आते हैं। इधर दो-ढाई महीने से रुपयों की आमद बन्द है। कुमुद प्रति सप्ताह चिट्ठी लिख-लिखकर कड़ा तक़ाज़ा कर रहा है। और अब तो उसने दो तार भी भेजे हैं। फिर भी अभी तक कोई उत्तर नहीं आया।

आज सोमवार है। हिन्दुस्तान से डाक आवेगी। सोच करते रहने से रात में कुमुद को अच्छी नींद नहीं आई। वह सोचता रहा है कि देखें चिट्ठी के साथ रुपयों की हुण्डी आती है या नहीं। सात बजते ही कुमुद उठ बैठा। और रोज़ बिना आठ बजे उसकी नींद टूटती ही न थी।

लन्दन के बेज़वाटर नामक महल्ले में किराये पर कमरे लेकर वह रहता था। प्रति सप्ताह घरवाली को किराये देने की शर्त थी। आज दो महीने हुए, कुमुद ने उसे एक पैसा भी नहीं दिया। इसके अलावा, इष्ट-मित्रों से—किसी से दो पाउण्ड, किसी से चार पाउण्ड—वह बहुत कुछ क़र्ज़ भी ले चुका है। अगर आज की डाक से तीन महीने के ख़र्च का रुपया आ जाय तो ख़ैर है, नहीं तो कुमुद को बड़ी विपद् में फँसना पड़ेगा।

सोने के कमरे में जो असबाब था वह बढ़िया अतएव क़ीमती था। चारों ओर दीवारें मटमैले और सुनहरे रङ्ग के चित्रित काग़ज़ से मढ़ी हुई थीं। नीचे उमदा क़ालीन बिछा था। एक ओर दीवार से मोटे रेशम का फ़ीता लटकता था। कुमुद ने उठकर उसके भब्बे को खींचा। मिनट भर में मकान की दासी ने दरवाज़े पर आकर पूछा—कहिए साहब?

"डाक आई?"

"नहीं. अभी तक तो नहीं आई।"

"अच्छा, गरम पानी लाओ"

गरम पानी आ गया। मुँह धोकर कुमुद कपड़े पहनने लगा। कपड़े पहनकर सिगरेट रखने की सोने की डिबिया खोलकर देखा तो एक भी सिगरेट नहीं। कल से सिगरेट नहीं हैं; रुपये की कमी के कारण वह सिगरेट नहीं खरीद सका है। अब पतलून के दोनों पाकिटों में हाथ घुसेड़कर वह खुले हुए जँगले के आगे खड़ा हो गया।

मई का महीना है। बाहर धूप फैल रही है। दूध बेचनेवाले की घरघराती हुई गाड़ी, रोटीवाले की गाड़ी, घर-घर सामान देती जाती है।

अन्त में दूर डाकवाले के दर्शन हुए। धीरे-धीरे वह इस मकान के समीप आया। अब कुमुद जल्दी से नीचे उतर गया।

चिट्ठी तो आई—लेकिन लिफ़ाफ़े पर कक्कड़ कम्पनी की मुहर नहीं! न मैनेजर की चिट्ठी आई है और न रुपया आया है। कुमुद का सिर घूमने लगा।

अन्यान्य चिट्ठियाँ लेकर वह धीरे-धीरे अपने सोने के कमरे में लौट आया। लिफ़ाफ़े खोल-खोलकर चिट्ठियाँ पढ़ने लगा। उनमें यह पत्र भी था—

प्रयागराज, २४ एप्रिल

भैया कुमुद,

पिछले इतवार को तुम्हारी चिट्ठी मिली सोमवार को मैं तुम्हारी दूकान पर इस बात का पता लगाने गया था कि आखिर तुम्हारे पास रुपये

भेजने में इतनी देर क्यों हो रही है। वहाँ मैनेजर से भेंट न हुई। दूकान में जो काम-काज कर रहे थे उनसे मालूम हुआ कि मैनेजर साहब आजकल दूकान में कभी ही कभी आ जाते हैं।

बाज़ार में अफ़वाह है कि कक्कड़-कम्पनी का दिवाला होनेवाला है। तुम्हारे पिता की मृत्यु के बाद से ही तुम्हारे फूफाजी और मैनेजर साहब मिलकर दूकान की रक़म हड़प रहे हैं। दूकान पर जब क़र्ज़ हो गया तब तुम्हारे रहने का मकान नीलाम हो गया। उसे तुम्हारे फूफाजी ने एक और आदमी के नाम से ख़रीद लिया है।

विश्वस्त सूत्र से पता लगा है कि पहली जून को मैनेजर साहब दिवालिया होने के लिए दर्ख़्वास्त देंगे। दूकान से चीज़ें हटाई जा रही हैं और जाली हिसाब आदि भी तैयार किया जा रहा है।

अगर तुम पहली जून से पहले ही यहाँ आ सको और मैनेजर को दिये गये अधिकार को मनसूख़ करा सको तो तुम्हारी दूकान बच सकती है, वर्ना नहीं। मुझे एक वकील मित्र से ये बातें मालूम हुई हैं।

हम लोग अच्छी तरह हैं। तुम्हारा जल्दी आ जाना बहुत ज़रूरी है।

तुम्हारा सिद्धिनाथ

चिट्ठी पढ़कर कुमुद माथे पर उँगली रखकर सोचने लगा। आज तेरहवीं मई है, सत्रहवीं मई शुक्रवार को मार्सलीज़ से पी० एण्ड ओ० कम्पनी का जहाज़ छूटेगा। अगर वह जहाज़ मिल जाय तो इक्कीसवीं मई को बम्बई और पहली जून की आधी रात को प्रयाग पहुँचेंगे। पहली तारीख़ से पहले न पहुँच सके तो कोई लाभ नहीं।

अगर फ्रांस या इटली का कोई जहाज़ जाता हो तो समय पर पहुँच सकते हैं। हाँ, किराये के लिए रुपये? पास में तो कुल पाँच-छः पैसे हैं; इसके सिवा और कुछ नहीं। कुमुद को मालूम था कि फ्रांस और इटली के जहाज़ों में तीसरा दर्जा भी होता है—किराया भी कम लगता है। देखें, शायद कुछ क़र्ज़ मिल जाय।

कुमुद ने दासी को बुलाकर कहा—बहुत जल्द हमें एक प्याला चाय और कुछ खाने के लिए ले आओ। हम अभी बाहर जाते हैं।

कोई पन्द्रह मिनट में दासी पके हुए दो अण्डे, कई टुकड़े रोटी के, मक्खन और चाय ले आई। झटपट इन चीज़ों को किसी तरह गले से नीचे उतारकर कुमुद हाथ में छड़ी ले बाहर निकल पड़ा।

लडगेट-सर्कस में टामस कुक कम्पनी का आफ़िस है। वहाँ जाने पर कुमुद को मालूम हुआ कि अगर कल यहाँ से रवाना हो सके तो मार्सलीज़ में एक फ्रांसीसी जहाज़ मिल जायगा। यह जहाज़ वक़्त पर बम्बई पहुँच जायगा।

कुमुद ने पूछा—इतनी देर से टिकट लेने पर जहाज़ में जगह मिल जायगी ?

कर्मचारी ने कहा—अब गरमियों का मौसम है। जो जहाज़ भारत को जाते हैं उनमें भीड़ बहुत नहीं होती। जो जहाज़ भारतवर्ष से इस तरफ़ आते हैं उनमें मुसाफ़िरों की अवश्य अधिकता रहती है। जगह काफ़ी मिलेगी।

"लेकिन हम तो तीसरे दरजे में जायँगे।"

"तीसरे दरजे में भी काफ़ी जगह रहती है।"

कुमुद ने तीसरे दरजे का किराया भी पूछ लिया। हिसाब लगाकर देखा, अगर पचीस पाउण्ड मिल सकें तो किसी प्रकार प्रयागराज के दर्शन हो जायँ।

अब कुमुद इष्ट-मित्रों से क़र्ज़ लेने चला।

२

पाँच बजे कुमुद हाईगेट की आमनीबस से पिकाडिली के मोड़ पर उतरा।

चेहरा उतर गया है, आँखें धँस गई हैं और ज़ोर-ज़ोर से साँस चल रही है।

दिन भर मित्रों के दरवाज़ों की ख़ाक छानने पर भी सात पाउण्ड से अधिक द्रव्य न मिल सका। अभी अट्ठारह पाउण्ड और चाहिए! अब कोई उपाय नहीं।

अगर सभी इष्ट-मित्र यहाँ होते तो शायद काम हो जाता। कितने ही मित्र समुद्र-किनारे गरमियाँ बिता रहे हैं। और

और साल कुमुद भी समुद्र-किनारे चला जाता था। इस साल पास टके न होने से नहीं जा सका। जिनको रुपयों का टोटा है वही छात्र लन्दन में पड़े वक्त काट रहे हैं।

उधार माँगने जाकर दो-एक जगह कुमुद को अपमानित भी होना पड़ा। वह बेचारा परले सिरे का अभिमानी है।

सबेरे उन्हीं दो अण्डों को पेट में रखकर वह घर से बाहर निकला था। तब से उसने भोजन तो दूर, पानी का घूँट भी नहीं पिया। मन की दशा अच्छी न होने से उसे भूख की ख़बर ही नहीं; परन्तु प्यास के मारे उसका गला सूखा जाता था।

आमनीबस से उतरकर मोड़ पर खड़ा-खड़ा कुमुद सोचने लगा। उसे जिन-जिनके घर जाना चाहिए था सबके घर भटक आया। और भी दो-चार परिचित छात्र हैं, पर उनसे अट्ठारह पाउण्ड मिलने की आशा नहीं।

कुमुद सोचने लगा—अब क्या करें?—डेरे पर लौट चलें? वहाँ लौटते ही घरवाली अपना लम्बा-चौड़ा बिल पेश करेगी!

कुछ ही दूर पर एक उच्च श्रेणी की पान-शाला का साइन-बोर्ड दिखाई दे रहा था। कुमुद ने अपने थके हुए चरणों को उसी ओर बढ़ाया। वहाँ उसने एक गिलास व्हिस्की और सोडा लाने का हुक्म दिया।

नौकर ने तुरन्त ही आज्ञा का पालन किया। कुमुद एक ही साँस में गट-गट करके आधे से अधिक गिलास ख़ाली

कर गया। इसके बाद मेज़ पर दोनों कुहनियाँ रखकर और हथेलियों से मुँह को ढककर वह अपने भाग्य की चिन्ता करने लगा।

ठीक वक्त पर देश पहुँचना असम्भव है—इसलिए सब डूबा। उसे अब भिखारी होना पड़ेगा। देश से अब रुपया न आवेगा। पहले से ही वह जिनका ऋण लिये बैठा है उनका क़र्ज़ अदा न कर सकेगा। वे लोग उसे चोर-लफ़ङ्गा भी समझेंगे। मकान खाली कर देने के लिए घरवाली बहुत करके नोटिस देगी और अपना रुपया वसूल करने के लिए उसका असबाब रख लेगी! दूसरे ही दिन से एक टुकड़े रोटी के लिए उसे भिखारी बनकर किसी के दरवाज़े जाना होगा!

कुमुद ने सिर उठाया। गिलास में जो बचा था उसे पी गया। नौकर ने एक टटका सान्ध्य समाचार-पत्र उसके आगे रखकर पूछा—और एक गिलास लाऊँ?

"लाओ"—कहकर कुमुद ने उस पत्र को खोला। आलस्य से इधर-उधर दृष्टि डालकर उसने कोई आधे कालम के समाचार पढ़ डाले। बड़े-बड़े अक्षरों में, तिहरे हेडिङ्ग के नीचे, यह समाचार था—लिवरपुल-निवासी एक इज़्ज़तदार सौदागर ने, बैपार में घाटा होने के कारण और क़र्ज़ पटाने के लिए कोई उपाय न देखकर, रात को अपने दफ़्तर की कोठरी में बैठकर तमञ्चे से आत्म-हत्या कर ली।

कुमुद ने मन में कहा—ठीक तो है!—खोजने पर भी रास्ता न मिलता था—यही तो रास्ता है।

नौकर व्हिस्की से परिपूर्ण गिलास और बिल ले आया। क़ीमत चुकाकर, व्हिस्की पीते-पीते कुमुद सोचने लगा—कौन रोवेगा? न बाप है, न माँ है और न भाई है। बहनें हैं, वे रोवेंगी। इष्ट-मित्रों में कोई-कोई रोवेगा। और—नहीं, जान पड़ता है वह न रोवेगी। काले के लिए कहीं गोरी रोती है?

व्हिस्की के गिलास को ख़ाली करके कुमुद मन ही मन कहने लगा—अगर ज़िन्दा बना रहूँ तो सबसे पहले सिर झुकाकर दग़ाबाज़ का ख़िताब लेना पड़ेगा। इसके बाद पेट पालने के लिए इस देश में न-जाने कितनी लाञ्छना सहनी पड़ेगी। ज़िन्दा रहने में कौन सा सुख है? इससे अच्छा तो यही है कि हाइडपार्क में बैठकर दन्न से एक आवाज़—और उसके साथ-साथ खेल ख़तम।

कुमुद मानों कल्पना से देखने लगा, दूसरे दिन के समाचार-पत्रों में बड़े मोटे टाइप में छपा है—

HYDE PARK TRAGEDY

AN INDIAN STUDENT

SHOOTS HIMSELF

WITH A REVOLVER

कुछ देर में वह मेज़ पकड़कर खड़ा हो गया। उस समय उसके नेत्र गुड़हल के फूल की तरह सुर्ख़ थे। अगर

कोई जान-पहचानवाला उसको उस अवस्था में देखता तो उसके मन की बातों को बिना जाने ही शङ्कित हो जाता।

वहाँ से निकलकर कुमुद आमनीबस में जा बैठा। हावर्न मे वह बन्दूकों की एक दूकान में गया। वहाँ से उसने एक तमञ्चा और छः कार्तूस ख़रीदे। कोट के भीतरी पाकेट में उसने उन्हें सावधानी से छिपाकर रख लिया। अब वह अपने कालेज के कमरे में बैठकर कुछ चिट्ठियाँ लिखने लगा।

३

कुमुद ने एक-एक करके कई चिट्ठियाँ लिखीं। पर हिन्दुस्तान के लिए सिर्फ़ दो—बाक़ी सब वहीं विलायत मे स्थित इष्ट-मित्रों के लिए। जिन-जिन से उसने क़र्ज़ लिया था उनको लिखा—"मैं देश को पत्र लिख रहा हूँ, अगर मेरी" दूकान में कुछ बचा होगा तो उससे आप लोगों का क़र्ज़ चुका दिया जायगा। और अगर वहाँ कुछ न बचा होगा तो भाई तुम इस बात को भूल जाना कि मुझे कुछ क़र्ज़ दिया था। यही समझ लेना कि तुमने अपने अभागे मित्र को विपत्ति के दिनों में दान कर दिया है।" घरवाली मेम को लिखा—"हमारी किताबें और सामान बेचकर अपने दाम वसूल कर लेना। अगर कुछ बच जाय तो वह भिखारियों को दान कर देना।" कुमुद ने एक व्यक्ति को एक पत्र और लिखना चाहा। हाथ में क़लम लिये कुछ देर तक सोचता रहा। अन्त में न लिखने का ही निश्चय किया।

पाकेट में चिट्ठियाँ रखकर कुमुद उठ बैठा। उस समय रात के आठ बज चुके थे, किन्तु ग्रीष्म-काल में इस समय भी लन्दन में दिन का सा उजेला है। कालेज से निकल कर उसने डाकघर से दो टिकट ख़रीदे और हिन्दुस्तान आने वाली दोनों चिट्ठियों पर चिपका दिये। उन दोनों को वह चिट्ठियों के बम्बे में डालने चला—फिर सोचा, नहीं, अन्यान्य चिट्ठियों के साथ इन्हें भी पाकेट में ही रहने दो। कल पुलिस ही इन्हें डाकघर में डाल देगी।

पाकेट में हाथ डालकर देखा, तमञ्चा और डाक-टिकट ख़रीद लेने पर अब कुल चार पेनी बची हैं। "एक पेनी आमनीबस का किराया हुआ और एक पेनी उस बेञ्च का किराया देना होगा जिस पर हाइडपार्क में बैठकर मैं निर्जनता और अन्धकार की प्रतीक्षा करूँगा। पृथ्वी में अब और दो पेनियों की क्या ज़रूरत है?" लड़के को गोद में लिये एक भिखारिन जा रही थी। उसे कुमुद ने वे दोनों पेनियाँ दे दीं। "ईश्वर आपका भला करे"—कहकर भिखारिन चली गई।

आमनीबस आई। हाइडपार्क के फाटक के सामने जब कुमुद उतरा तब साढ़े आठ बजे थे। हाइडपार्क में प्रवेश करके उसने सोचा—और आध घण्टा जाने दो! आध घण्टे बाद अँधेरा हो जायगा।

अभी तक बहुतेरे नर-नारी पार्क के भीतर घूमते-फिरते हैं। स्थान-स्थान पर घास के ऊपर दो-दो कुरसियाँ पड़ी हैं। प्रायः

सभी पर एक-एक युगल मूर्ति विराजमान है। इधर-उधर घास पर बैठकर अथवा लेटकर लोग गप-शप कर रहे हैं। जहाँ मनुष्यों की भीड़-भाड़ थी उस स्थान को छोड़कर कुमुद एकान्त स्थल की खोज में घूमने लगा।

दिन का उजेला रात की ओढ़नी में छिपने लगा। एक जगह कुमुद उदास भाव से खड़ा था। उसी समय किसी ने पीछे से एकाएक उसके हाथ को स्पर्श किया। उसने चौंक कर पीछे मुड़कर देखा। देखते ही टोपी उठाकर कहा—उथेलो! बड़े भाग!

कुमुद ने जिससे सम्भाषण किया वह कोई बीस वर्ष की युवती है। फैशन से उसकी पोशाक और सजावट की मुहब्बत न थी। उसकी बातचीत का ढँग भी शिक्षिता महिला की तरह का न था। वह ऐसी युवती न थी जिसे अँगरेज़ी में लेडी (Lady) कहते हैं। वह किसी होटल के भोजन-विभाग मे नौकर थी। उसी भोजनशाला में, कोई एक साल पहले, कुमुद से उसका पहले पहल परिचय हुआ था।

युवती ने कहा—चलो, बस रहने भी दो। बड़े भाग! मानो हमें देखकर बहुत ही ख़ुश हुए हैं। कोई एक महीने मे आज मुलाक़ात हुई है। अच्छा कुमुद, तुम्हारा चेहरा ऐसा क्यों हो गया? तुम्हें क्या कोई बीमारी हो गई थी?

कुमुद ने कहा—"नहीं तो।" वह मन में सोच रहा था—याद नहीं पड़ता कि मैंने जान-बूझकर किसी और का

कोई विशेष अनिष्ट किया हो—पर इसका तो मैं अपराध कर चुका हूँ। उसके लिए आज इससे क्षमा-प्रार्थना करके ही जाऊँ—जान पड़ता है, यही मौक़ा देने के लिए ईश्वर ने दया करके इस समय इसे यहाँ भेज दिया है।

उथेलो बोली—चलो, घूमें। अच्छा बतलाओ, तुम इधर महीने भर से अच्छी तरह थे न? हमें धोखा तो नहीं देते हो? अगर भले-चंगे थे तो इधर महीने भर से हमारे होटल में आये क्यों नहीं?

"इसी लिए कि रुपये न थे।"

"वाहियात बात! रुपये न होने से ही तुम हमारे होटल में खाना खाने नहीं आये! क्यों, तुम्हारे रुपये क्या हुए?"

"तीन महीने हो गये, देश से रुपये नहीं आये।"

"क्यों?"

"रोज़गार में घाटा हुआ है।"

"कहते क्या हो?" कहकर उथेलो शङ्कित भाव से कुमुद की ओर देखने लगी।

हाइडपार्क के बीचोंबीच सर्पेण्टाइन नामक एक दीर्घिका है। इस समय बातें करते-करते ये उसी सर्पेण्टाइन के पास आ गये। इस दीर्घिका में छोटी-छोटी कई किश्तियाँ हैं। इन्हें किराये पर लेकर लोग जल-विहार किया करते हैं। उथेलो ने कहा—प्यारे कुमुद, चलो किश्ती लेकर हम लोग ज़रा सैर कर आयें। अँधेरे में पानी पर सैर करने में बड़ी मौज है।

कुमुद ने कहा—अफ़सोस की बात है, मेरे पास किराया देने के लिए दाम नहीं। सिर्फ़ एक पेनी है और दुनिया में यही मेरी अन्तिम पेनी है।

उथेलो ने कहा—क्या कहते हो? 'दुनिया में मेरी अन्तिम पेनी' के क्या मानी?

कुमुद ने कहा—अर्थात् इस पेनी के सिवा और कुछ भी मेरा नहीं।

सन्दिग्ध भाव से उथेलो कुमुद की ओर ताकती रही। कुमुद ने कहा—देखो, सर्पेण्टाइन के उस किनारे पर खूब एकान्त है—चलो, हम वहीं बैठें। तुमसे कुछ कहना है।

"चलो।"

सर्पेण्टाइन के किनारे-किनारे चलकर जब उस पार वे पहुँचे तब अँधेरा हो गया। पार्क में जगह-जगह बिजली की रोशनी हो गई। रोशनी से दूर एक पेड़ के नीचे, जल के पास ही, घास के ऊपर दोनों बैठ गये।

४

उथेलो इतना खूब समझ गई थी कि आज कुमुद का मन बहुत ख़राब है। इसी से वह उसका जी बहलाने के लिए स्त्री-सुलभ तरह-तरह की बातें करने लगी। किन्तु उसने देखा कि कुमुद के कानों में वे बातें पहुँचती ही नहीं। दो-दो तीन-तीन बार कहने पर भी वह सुप्तोत्थित व्यक्ति की तरह पूछने लगता—क्या कहती हो?

अँधेरा खूब घना हो गया। आकाश में सैकड़ों तारे चमकने लगे। हवा के हलके झोंके से ताथेई-ताथेई करनेवाली सर्पेण्टाइन की छाती पर तारागणों की माला का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। हाथ पर सिर रक्खे हुए अर्द्धशयान अवस्था में कुमुद सर्पेण्टाइन के जल की ओर टकटकी लगाये देख रहा है। उथेलो ने पूछा—कुमुद, क्या सोच रहे हो ?

कुमुद—तुमने शेली का नाम सुना है ?

"कौन ? क्या कोई तुम्हारा दोस्त है ?"

"वे विगत शताब्दी में एक महाकवि हो गये हैं।"

"हाँ, मुझे न मालूम था।"

"उन्होंने पहले हेनरियेट नाम की एक युवती से विवाह किया था। फिर कुछ दिनों में दोनों के प्रेम का नाता टूट गया। इसके बाद एक दिन हेनरियेट रात को यहाँ आई और इसी सर्पेण्टाइन के पानी में डूब मरी।"

यह बात सुनते ही उथेलो के रोंगटे खड़े हो गये। उसने कहा—ओफ़, कैसी भयङ्कर बात है! तुमको किस तरह मालूम हुआ ?

"मैंने शेली के जीवनचरित में पढ़ा है।"

उथेलो सन्न हो गई। फिर वह शङ्कित चित्त से कुमुद की ओर देखने लगी। किन्तु वह अन्धकार में उसके चेहरे का भाव न जान सकी। अब उसने एक और उपाय किया।

उथेलो ने प्रेम के स्वर में कहा—अच्छा कुमुद, जो मैं उस हेनरियेट की तरह इस सर्पेण्टाइन में कूद पड़ूँ तो तुम क्या करो ?

कुमुद—मैं भी पानी में कूद पड़ूँ और तुम्हें निकाल लाऊँ।

"तुम तैरना जानते हो ?"

"कुछ-कुछ। जब मैं देश में था तब कई मरतबे शर्त लगाकर गङ्गा पार कर चुका हूँ।"

उथेलो का हृदय काँप उठा। उसने कहा—ईश्वर को धन्यवाद।

कुमुद ने पूछा—उथेलो, तुमने ऐसा क्यों कहा?

उथेलो चुप रह गई; कुछ न बोली।

कुमुद ने फिर पूछा—तुम्हें क्या यह सन्देह हो गया है कि आज मैं सर्पेण्टाइन में कूदकर आत्महत्या कर लूँगा ?

उथेलो ने रोते-रोते कहा—चलो हटो, मैं न बोलूँगी।

कुमुद मन में कहने लगा—"बड़े अचरज की बात है। पृथ्वी से सदा के लिए विदा होते वक्त यह कहाँ से आकर आँसू-भरी दृष्टि से मेरा रास्ता रोके खड़ी है ! मेरी स्वदेशीया नहीं, स्वजातीया नहीं, और तो क्या सवर्णा भी नहीं—मेरी कोई नहीं—इसे इतना रञ्ज क्यों है ?" कुमुद की आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े।

और दो-चार बातों के बाद कुमुद ने कहा—देखो उथेलो, मैं तुम्हारे निकट अपराधी हूँ। क्या मुझे उसके लिए क्षमा कर दोगी ?

उथेलो ने पूछा—कौन सा अपराध ?

"मन में सोचो—मैंने क्या तुम्हारे साथ कुछ अन्याय नहीं किया ?"

कुमुद का हाथ पकड़कर उथेलो बोली—"आज तुम ऐसी बातें क्यों कर रहे हो ?"—उसकी यह आवाज़ गद्गद कण्ठ से निकली थी।

कुमुद—अगर किसी ने किसी का कुछ अपराध किया हो तो क्या वह उससे क्षमा न माँगे ?—उथेलो, तुम मुझे क्षमा कर दो।

कुमुद का हाथ छोड़कर उथेलो ने कहा—रहने दो, जो ऐसी बातें करोगे तो मैं रोने लगूँगी। तुम्हें आज हो क्या गया है ?

यह भाव देखकर कुमुद उसे समझाने लगा।

कुमुद अर्द्धशयान अवस्था में पड़ा था। उथेलो समीप ही बैठी थी। कुछ इधर-उधर की बातें करके उथेलो ने खेल-खेल में कुमुद के कोट का बटन खींचा। एकाएक उसे मालूम हुआ कि किसी जगह कोई चीज़ है। उसने फुर्ती से कुमुद के पाकेट से वह चीज़ निकाल ली और रुँधे हुए स्वर से पूछा—कुमुद, यह क्या है ?

"तमञ्चा।"

"इसकी जरूरत ?"

"रात-बिरात अँधेरे-उजेले में न-जाने कहाँ-कहाँ घूमा करता हूँ। साथ में तमञ्चा रहना अच्छा है। घोड़े को मत दबाना।"

इसी बीच उथेलो बड़ी फुर्ती से उठकर खड़ी हो गई। कुमुद की बात ख़तम भी न होने पाई थी कि वह पानी की तरफ़ लपकी।

"क्या करती हो, क्या करती हो"—कहता हुआ कुमुद भी उसके पीछे दौड़ा। पानी के पास जाकर उसने उथेलो का वस्त्र पकड़ लिया।

उथेलो ने उसी दम सर्पेण्टाइन के मध्य भाग की सीध में पूरे ज़ोर से तमञ्चा फेक दिया।

पानी के किसी अदृश्य अंश से 'छप' ऐसी आवाज़ सुनाई दी। नरशोणित के बदले वह शिशुराक्षस अपनी अग्निमयी तृषा को पानी से ही निवारण करने पर बाध्य हुआ।

५

उथेलो के हाथ को बड़े ज़ोर से दबाकर कुमुद ने कहा—शैतान, यह क्या किया?

उथेलो बोली—शैतान, अच्छा ही तो किया—ख़ूब किया—मेरी ख़ुशी—छोड़ दे मेरी कलाई।

कुमुद ने कहा—सोचा भी है—तमञ्चे के सिवा मेरे लिए और कोई उपाय नहीं है!

उथेलो—हाय! छोड़ो मेरी कलाई, हाथ तो कट गया। दर्द होता है—अरे छोड़!

कुमुद ने उसका हाथ छोड़ दिया। धीरे-धीरे फिर उसी जगह वह आ बैठा। इस मरतबे वह लेटा नहीं।

उथेलो ने वहाँ आकर कहा—"देखो अपनी करतूत! क्या किया है! मेरी कलाई की चूड़ी टूटकर कलाई के मांस में घुस गई है। अरे रे!"—वह दर्द के मारे हाथ झटकने लगी।

पाकेट में दियासलाई थी। एक सलाई जलाकर कुमुद ने देखा कि उथेलो की बात बिलकुल सच है। अनामेल की चूड़ी टूट गई है और एक टुकड़े की नोक उथेलो की कलाई में छिद गई है। ख़ून बह रहा है।

वह उसे तुरन्त झील के किनारे ले गया। चूड़ी के टुकड़े को निकालकर उसने घाव को धोया। फिर कुछ घास उखाड़कर उसे ख़ूब चबाया और घाव पर रख दिया। फिर रूमाल से एक चिन्धी फाड़कर पानी में भिगोई और पट्टी बाँध दी। प्रेम के साथ पूछा—उथेलो! क्या अब भी बहुत दर्द है?

उथेलो—नहीं, अब कुछ घट गया है।

"सचमुच उथेलो मैं पशु हूँ। चलो" कहकर फिर दोनों उसी जगह जा बैठे।

कुमुद ने कहा—अब दर्द कैसा है? चलो किसी दवा-ख़ाने में अच्छी तरह से बँधवा दें।

उथेलो खड़ी हो गई—"एक पेनी से क्या दवा हो सकेगी?"

आह भरकर कुमुद ने कहा—हाँ, मैं तो भूल ही गया।"

उथेलो ने कहा—चलो अब बाहर चलें। किसी दवा-खाने में नहीं, किसी भोजनशाला में चलें। मेरे पास रुपये हैं। बड़ी भूख लगी है।

कुमुद ने पूछा—क्या तुम खाना खाकर न आई थीं?

"सात बजे ही खा आई थी। इधर तीन-चार घण्टे में फिर भूख न लगेगी! तुमने खाना कब खाया था?"

"खाया ही नहीं।"

"खाया नहीं!—चाय?"

"चाय भी नहीं पी।"

"नाश्ता?"

"वह भी नहीं। आठ बजे घर से दो अण्डे खाकर निकला हूँ। तब से फिर कुछ भी नहीं खाया।"

यह सुनकर उथेलो बोली—हाय हाय! दिन भर में कुछ भी नहीं खाया! चलो, जल्दी चलो—अब ज़रा भी देर न करो।

फाटक से निकलकर दोनों एक भोजनालय में पहुँचे। उथेलो ने पूछा—कोई एकान्त कमरा खाली है?

नौकरनी ने ज़रा मुसकुराकर कहा—हाँ है, आइए।

कमरे में दोनों के लिए खाने का सामान आ गया। अब यहाँ और कोई न आ सकेगा। बिना बुलाये नौकरनी तक न आ सकेगी।

पेट में कुछ आहार पहुँचने पर कुमुद की देह में मानो नये प्राणों का सञ्चार हुआ। भोजन कर चुकने पर नौकरनी मेज़ साफ़ कर गई।

अब कुरसी छोड़ दोनों आरामकुर्सियों पर लेट गये। उथेलो ने पूछा—अच्छा बतलाओ तो कुमुद, तुम पर यह पागलपन क्यों सवार हुआ था?

आरम्भ में कुमुद कुछ बतलाता ही न था; बड़ी मुश्किलों में उसने अपना हाल बतलाना शुरू किया। आदि से अन्त तक सब बातें सुनाकर उसने कहा—इस अवस्था में सिवा आत्महत्या के और मैं कर ही क्या सकता हूँ? और उपाय ही क्या है? आज तुमने रोक लिया तो कल सही, कल नहीं तो परसों सही—इसके सिवा मुझे और कोई मार्ग नहीं सूझता। बतलाओ न, क्या करूँ? जो आत्महत्या नहीं करता तो भूखों मरना पड़ेगा। उससे तो—

उथेलो—कितने पाउण्ड मिलने पर तुम देश पहुँच सकते हो?

"पचीस पाउण्ड।"

"कल शाम की रेल ही आख़िरी गाड़ी है?"

"हाँ।"

"कल कै बजे तक रुपये मिल जाने से तुम्हारा काम हो सकता है?"

"तीन बजे तक।"

"अच्छा, मैं कोशिश करूँगी।"

कुमुद अचम्भे में आकर बोला—तुम! उथेलो, तुम्हें पचीस पाउण्ड कहाँ मिलेंगे?

उथेलो—दस पाउण्ड तो मेरे ही पास हैं। डाकखाने में जमा हैं। जब चाहे उठा लाऊँगी। बाकी पन्द्रह पाउण्ड कहीं से लाने की चेष्टा करूँगी। अगर मुझे कामयाबी हो जाय तो फिर तुम वह अपना बुरा इरादा छोड़ दोगे न?

"ज़रूर।"

"अच्छा, कल तीन बजे तुम चान्सेरी लाइन और फ्लीट स्ट्रीट के मोड़ पर मिलना। मैं आऊँगी। अगर रुपये पा जाऊँगी तो उसी समय दे दूँगी।"

"बहुत अच्छा।"

रात के साढ़े ग्यारह बज गये। भोजनालय से निकल कर दोनों उथेलो के डेरे की ओर बढ़े। वह दो मील है। दरवाज़े के बाहर जब वे परस्पर बिदा हुए तब अँगरेज़ी तारीख़ बदल गई थी।

६

दूसरे दिन निर्दिष्ट समय और स्थान पर कुमुद से उथेलो की भेंट हुई। रुँधे हुए गले से कुमुद ने पूछा—कहो क्या हुआ?

"रुपये मिल गये। पहले कुक के दफ़्तर को चलो—टिकट ले आवें।"

"तुम मेरे साथ चलोगी ?—तुम्हारे काम में—"

उथेलो ने हँसकर कहा—मेरी तो छुट्टी है! पट्टी बँधे हुए हाथ से जो मैं परोसूँगी तो कोई भोजन ही न करेगा!—इसी से मैनेजर ने हाथ अच्छा हो जाने पर ही काम पर बुलाया है। इतने दिनों की छुट्टी है। अच्छा ही हुआ—नहीं तो रुपयों का इन्तज़ाम करने के लिए वक़्त न मिलता।

दोनों ने कुक के दफ़्र से टिकट खरीद लिया।

शाम के आठ बजे विक्टोरिया स्टेशन से कुमुद की गाड़ी छूटेगी। दोनों एक साथ खाना खाकर ठीक वक़्त पर स्टेशन पहुँच गये।

कुमुद ने कहा—उथेलो, तुम्हारे इस उपकार को मैं ज़िन्दगी भर न भूलूँगा। अगर मैं अपने रोज़गार की रक्षा कर सका—तो दो महीने बाद तुम्हारे ये रुपये भेज दूँगा।

उथेलो कुछ भी उत्तर न दे सकी। गला भर आया। आँखों में आँसू आ गये।

गाड़ी छूटने का समय हो गया।

उथेलो ने कहा—गुडबाई कुमुद—जान पड़ता है, हमारी-तुम्हारी यह अन्तिम भेंट है।

कुमुद—यह बात क्यों कहती हो उथेलो ?

उथेलो—जब हमारे-तुम्हारे बीच सात हज़ार मील का अन्तर हो जायगा तब फिर क्या हमारी याद करोगे ?

"तुम्हें भूल सकता हूँ ? शरीर में प्राण रहते तो ऐसा होने का नहीं।"

उथेलो ने कहा—यह लो, लालटेन दिखा रहा है। गाड़ी पर सवार हो जाओ, गुडबाई (अन्तिम अभिवादन)।

"गुडबाई नहीं, उथेलो। फिर मिलूँगा; फिर मुलाक़ात होगी" कहकर कुमुद ने उथेलो के हाथ पर अपने ओठों का स्पर्श कर दिया।

गाड़ी खुल गई।

सच्चा चित्र देखना चाहते हैं तो त्रिधारा की सैर ज़रूर कीजिए। मूल्य सिर्फ़ १) एक रुपया।

षोड़शी—बङ्ग-भाषा में कहानियाँ लिखने में बाबू प्रभात-कुमार मुखोपाध्याय ने ख़ासा नाम कमाया है। आपकी लिखी उत्तमोत्तम सोलह कहानियों का इसमें सङ्ग्रह है। मूल्य १।) एक रुपया चार आने।

देशी और विलायती—यह प्रभात बाबू की बढ़िया-बढ़िया कहानियों का संग्रह है। इसमें 'पूर्व' और 'पश्चिम' का अद्भुत सम्मिलन है। एक ओर विलायती चित्र है, तो दूसरी ओर भारतीय। देखने ही के योग्य है। हिन्दी के पाठक प्रभात बाबू की रचनाओं से परिचित हो चुके हैं। इनकी शैली की प्रशंसा करना व्यर्थ है। मूल्य २॥) दो रुपया आठ आने।

रत्नदीप—यह शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास सचमुच रत्नों का दीप है। इसमें पुरुष-चरित्र का उत्कर्ष दिखलाया गया है। इसे पढ़ते-पढ़ते आप कभी विस्मय से अभिभूत होंगे, कभी करुणा से द्रवित होंगे, कभी क्रोध के वशीभूत होंगे और कभी भक्तिभाव से पुलकित हो जायँगे। पढ़ने मे ऐसा मन लग जायगा कि खाने-पीने तक की सुध न रहेगी। इसकी भाषा सरल, सरस और साधारण बोल-चाल की है। पुस्तक सचित्र है। सुन्दर जिल्द है। मूल्य केवल २) रु०।